अनेकान्त

एकेनाकर्षन्ती श्लथयन्ती वस्तुतत्त्वमितरेण।
अन्तेन जयति जैनी नीतिर्मन्थाननेत्रमिव गोपी॥

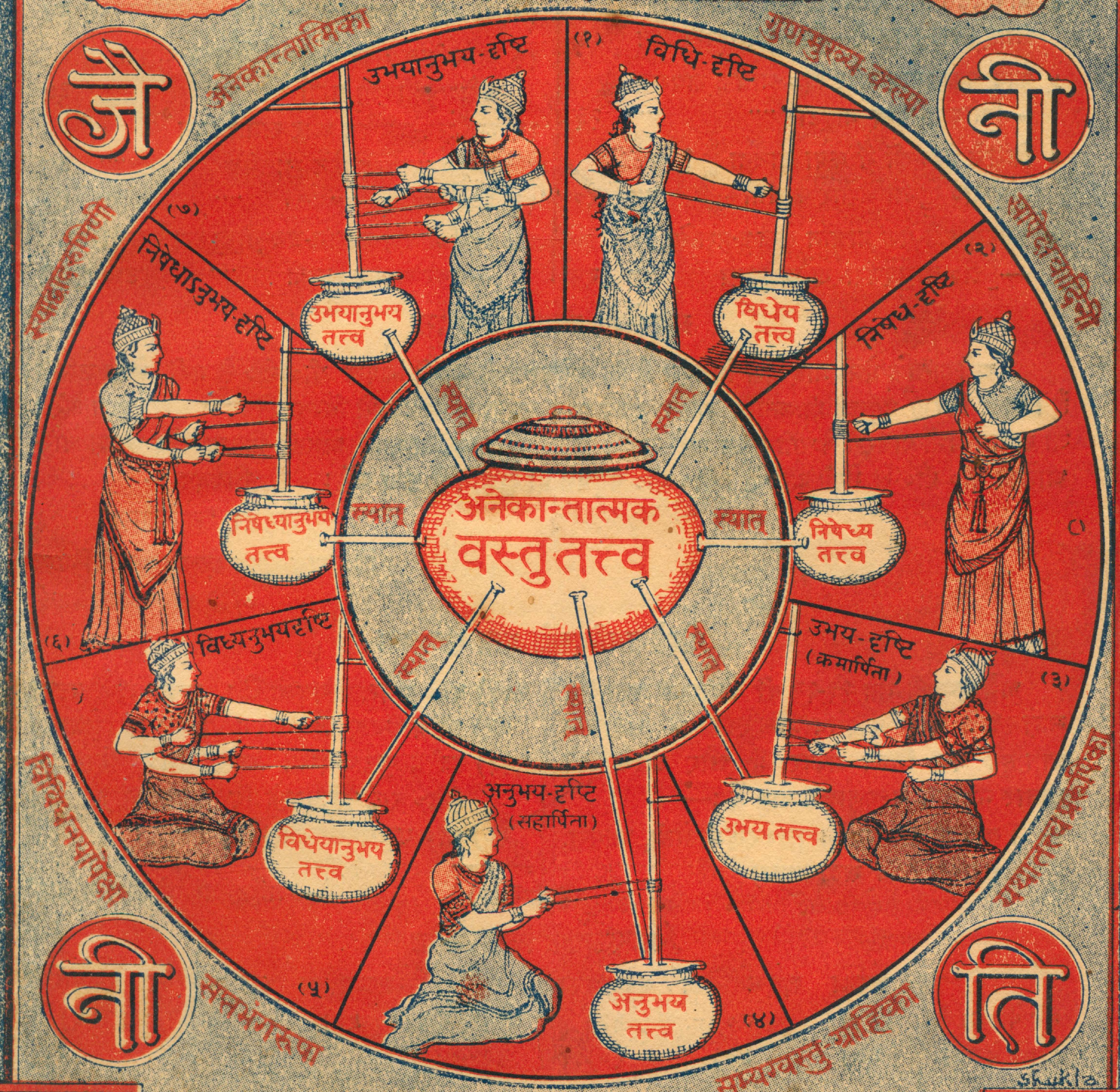

वर्ष १० | किरण १

विधेयं वार्यं चाऽनुभयमुभयं मिश्रमपि तद्विशेषैः प्रत्येकं नियमविषयैश्चाऽपरिमितैः।
सदाऽन्योऽन्यापेक्षैः सकलभुवनज्येष्ठगुरुणा त्वया गीतं तत्त्वं बहुनय-विवक्षेतरवशात्॥

सम्पादक — जुगलकिशोर मुख्तार

Jain Education International | For Personal & Private Use Only | www.jainelibrary.org

विषय-सूची

१ श्रीवीर-स्तवन—[भ० अमरकीर्ति २

२ अनेकान्त-रस-लहरी—[पं० जुगलकिशोर ३

३ युक्तिका परिग्रह—[डा० वासुदेवशरण ८

४ श्रीपण्डितप्रवर दौलतरामजी और उनकी साहित्यिक-रचनाएँ—[पं० परमानन्द जैन ६

५ कवि पद्मसुन्दर और दि० श्रावक रायमल्ल —[श्रीअगरचन्द नाहटा १६

६ किसके विषयमें मैं क्या जानता हूँ ? —[ला० जुगलकिशोर कागजी २०

७ कल्पसूत्रकी एक प्राचीन लेखक-प्रशस्ति —[डा० वासुदेवशरण अग्रवाल २२

८ अहारक्षेत्रके प्राचीन-मूर्तिलेख—[पं० गोविन्द-दास न्यायतीर्थ २४

९ भगवान महावीर, जैनधर्म और भारत —[श्रीलोकपाल २६

१० वीर-शासन-जयन्ती—[ला० जिनेश्वरप्रसाद ३४

११ आप्तकी श्रद्धाका फल—[श्री १०५ क्षुल्लक गणेशप्रसादजी वर्णी ३५

१२ साहित्य-परिचय और समालोचन —[परमानन्द जैन शास्त्री ३८

१३ सम्पादकीय ४०

१४ दिल्लीमें वीर-शासन-जयन्तीका अपूर्व समारोह —[परमानन्द शास्त्री .... टा० पृ० ३

ग्राहकोंको आवश्यक-सूचना

अनेकान्तके प्रेमी ग्राहकोंसे निवेदन है कि अनेकान्तकी पहली किरण वी० पी० से नहीं भेजी जारही है। अतः किरण पहुँचते ही अपना वार्षिक मूल्य पाँच रुपया मनीआर्डरसे निम्न पतेपर भेजनेकी कृपा करें। जो सज्जन मनीआर्डरसे पेशगी मूल्य नहीं भेजेंगे उनके पास अनेकान्तकी अगली किरण पाँच रुपया चार आनेकी वी० पी० से भेजी जावेगी। वी० पी० पहुँचते ही छुड़ानेकी कृपा करें। निवेदक :–

मैनेजर 'अनेकान्त'

ठि० रायसाहब उल्फतराय बिल्डिंग,
७/३३ दरियागंज, देहली

वीरसेवामन्दिरको प्राप्त सहायता

अनेकान्तकी गत ११-१२ वीं किरणमें प्रकाशित सहायताके बाद वीरसेवामन्दिरको जो सहायता प्राप्त हुई वह निम्न प्रकार है और उसके लिये दातार महोदय धन्यवादके पात्र हैं :—

२००) बा० सिद्धकरण निहालकरणजी सेठी, आगरा, (लायब्रेरीकी सहायतार्थ)

१०१) बा० अनन्तप्रसादजी जैन, इन्जीनियर, पटना

२५) श्री वीरचन्द कोदरजी गांधी, फल्टण (सतारा)

११) हकीम फूलचन्दजी, रुड़की जि० सहारनपुर (चि० राजेन्द्रकुमारके विवाहोपलक्षमें)

१०) बा० बसन्तीलालजी जैन, जयपुर।

३४७)

—अधिष्ठाता 'वीरसेवामन्दिर'

अनेकान्तके विज्ञापन-रेट

	एक वर्षका	छह महीनेका	एकबारका
पूरे पेजका	१५०)	८०)	१५)
आधे पेजका	८०)	५०)	१०)
चौथाई पेजका	५०)	३०)	६)

स० सम्पादक : दरबारीलाल कोठिया, न्यायाचार्य

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ॐ अर्हम्

★ वार्षिक मूल्य ५) ★

★ एक किरणका मूल्य ।।) ★

वर्ष १० किरण १	वीरसेवामन्दिर (समन्तभद्राश्रम), ७/३३ दरियागंज, देहली श्रावण, वीर निर्वाण-संवत् २४७५, विक्रम-संवत् २००६	जुलाई १९४९

श्रीवीर-स्तवन

[यमकाष्टक स्तोत्र]

[यह स्तोत्र अभी हालमें १९ जूनको पंचायतीमन्दिर देहलीके शास्त्र-भंडारको देखते हुए उपलब्ध हुआ है। इसमें यमकालंकारको लिये हुए वीर भगवानके स्तवन-संबंधी आठ पद्य हैं । अन्तके दो पद्य प्रशस्त्यात्मक हैं और उनमें स्तोत्रकार अमरकीर्तिने अपना और अपनी इस रचनाका संक्षिप्त परिचय दिया है, जिससे मालूम होता है कि 'इस स्तोत्रके रचयिता भट्टारक अमरकीर्ति विद्यानन्दके शिष्य थे, परशीलवादियों अथवा परमतवादियोंके मदका खण्डन करनेवाले थे, उन्होंने परमागमका अध्ययन किया था, शब्दशास्त्र और युक्ति (न्याय) शास्त्रको अधिगत किया था और विद्वानोंके लिये देवागमाऽलंकृति नामक ग्रन्थकी रचना की थी । उनका यह वीररूप अर्हत्परमेश्वरका यमकाष्टक स्तोत्र मंगलमय है, जो भव्यजन सदा (भावपूर्वक) इस स्तोत्रका पाठ करता है वह भारतीमुखका दर्पण बन जाता है—सरस्वती देवी सदा ही उसमें अपना मुख देखा करती है अथवा यों कहिये कि सरस्वती का मुख उसमें प्रतिबिम्बित हुआ करता है । यह रचना बड़ी सुन्दर गम्भीर तथा पढ़नेमें अतिप्रिय मालूम होती है । अष्टक पद्योंके प्रत्येक चरणमें एक एक शब्द एकसे अधिकवार प्रयुक्त हुआ है और वह भिन्न भिन्न अर्थको लिये हुए है इतना ही नहीं बल्कि एक ही पदमें अनेक अर्थोंको भी लिये हुए है, जिन्हें साथमें लगी हुई टीका-द्वारा स्पष्ट कियागया है और जो प्रायः स्वोपज्ञ जान पडती है, यही इस यमकरूप काव्यालंकारकी विशेषता है, जिसे इस स्तोत्रमें बड़ी खूबीके साथ चित्रित किया गया है। प्रत्येक अष्टक पद्यका चौथा चरण 'वीरं स्तुवे विश्वहितं हितं हितम्' रूपको लिये हुए है, जिसमें टीकानुसार यह बतलाया है कि 'मैं उस वीरका स्तवन करता हूँ जो विश्वके लिये हित रूप है, विश्वजनोंका वृद्ध है या सारे विश्व अथवा विश्व के सब पदार्थ जिसके लिये हितरूप—पथ्यरूप हैं—कोई विरोधी नहीं— अथवाद्रव्य-गुण-पर्याय-रूप, चेतन अचेतनरूप, मूर्त-अमूर्तरूप और देश-कालादिके अन्तरितरूप जो सर्ववस्तुसमूह है वह विश्व, उसे युगपत्

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

साक्षात् जानता है (हितोऽभिगच्छति) और हित जो मोक्ष तथा मोक्षका कारण क्रियाकलाप उसे प्राप्त (हितं गतम्) हुआ है अथवा हितकारी जो इन्द्रभूत्यादि गणधर उनके प्रति भी हितरूप है—हितप्रद है'। साथ ही 'वीर' शब्दके अर्थमें युक्तिसे वृषभादि अन्य तीर्थंकरोंका भी समावेश किया है और इस तरह वीर भगवानके इसस्तवनमें अन्य जैन तीर्थङ्करोंके स्तवनको भी सम्मिलित किया है।

अमरकीर्ति नामके अनेक विद्वान् आचार्य तथा भट्टारकादि होगये हैं। जैसे एक अमरकीर्ति वे जिन्हें वि० संवत् १२४७ में बनकर समाप्त हुए षट्कर्मोपदेश नामके अपभ्रंश ग्रन्थमें 'महाकवि' लिखा है। दूसरे अमरकीर्ति वे जिनके शिष्य माघनन्दी व्रती और प्रशिष्य भोगराज (सौदागर) थे। भोगराजने शक संवत् १२७७ (वि० सं० १४१२) में शान्तिनाथकी प्रतिमा प्रतिष्ठित कराई थी। तीसरे अमरकीर्ति वे जो कलिकालसर्वज्ञ भट्टारक धर्मभूषणके शिष्य थे और जिनका उल्लेख शक सं० १२९५ में लिखे गये श्रवणबेलगोलके शिलालेख न० १११ (२७४) में आया है। चौथे अमरकीर्ति वे जो वादी विद्यानन्दके शिष्य थे और जिनका उल्लेख नगरतालुकाके शिलालेख नं० ४६ में आया है (E. C. Part II)। ये विद्यानन्दके शिष्य चौथे अमरकीर्ति ही इस स्तोत्रके कर्ता जान पड़ते हैं और इसलिये इनका तथा इस स्तोत्रकी रचनाका समय विक्रमकी १६वीं शताब्दी समझना चाहिए। इस स्तोत्रमें स्तोत्रकारने अपनी जिस 'देवागमालंकृति' नामकी रचनाका उल्लेख किया है वह अभी तक अपने देखनेमें नहीं आई, उसकी खोज होनी चाहिये। वह बहुधा बड़े विद्यानन्दस्वामीकी 'आप्तमीमांसालंकृति नामक अष्टसस्री ग्रन्थको सामने रखकर कुछ विशेषरूपमें लिखी गई होगी। —सम्पादक]

[जगती]

विद्याऽऽस्पदाऽऽर्हन्त्य-पदं पदं पदं प्रत्यग्र-सत्पद्म-परंपरं परम्।
हेयेतराकार-बुधं बुधं बुधं वीरं स्तुवे विश्व-हितं हितं हितम् ॥१॥
दिव्यं वचो यस्य सभा सभासभा निपीय पीयूषमितं मितं मितम्।
बभूव तृप्ता ससुराऽसुरा सुरा वीरं स्तुवे विश्वहितं हितं हितम् ॥२॥
शत्रु-प्रमाऽन्यैरजिता जिता जिता गुणावली येन धृताऽधृता धृता।
संवादिनं तीर्थकरं करं करं वीरं स्तुवे विश्वहितं हितं हितम ॥३॥
मयूख-मालेव महा महा महा-लोकोपकारं सविताऽविताऽविता।
विभाति यो गन्धकुटी कुटीकुटी वीरं स्तुवे विश्वहितं हितं हितम् ॥४॥
साऽराग-संस्तुत्य-गुणं गुणं गुणं सभाजयिष्णु सशिवं शिवं शिवम्।
लक्ष्मीवतां पूज्यतमं तमं तमं वीरं स्तुवे विश्वहितं हितं हितम् ॥५॥
सिद्धार्थ-सन्नन्दनमाऽऽनमाऽऽनमाऽऽनंदाद्ववर्षे द्यु सदाऽऽसदा सदा।
यस्योपरिष्टात् कुसुमं सुमं सुमं वीरं स्तुवे विश्वहितं हितं हितम् ॥६॥
प्रत्यक्षमध्यैर्दचितं चितं चितं यो मेयमर्थं सकलं कलंकलम्।
व्यपेत-दोषाऽऽवरणं रणं रणं वीरं स्तुवे विश्वहितं हितं हितम् ॥७॥
युक्त्याऽऽगमाऽबाधिगिरं गिरं गिरं चित्रीयिताख्येयभरं भरं भरम्।
संख्यावतां चित्तहरं हरं हरं वीरं स्तुवे विश्वहितं हितं हितम् ॥८॥

अध्येष्टाऽऽगममध्यगीष्ट परमं शब्दं च युक्तिं विदां चक्रे यः पर-शील-वादि-मद-भिद्देवागमाऽलंकृतिम्।
विद्यानन्द-भुवाऽमरादियशसा तेनाऽमुना निर्मितं वीराऽऽर्हत्परमेश्वरस्य यमक-स्तोत्राऽष्टकं मंगलम् ॥९॥
भट्टारकैः कृतं स्तोत्रं यः पठेद्यमकाऽष्टकम्। सर्वदा स भवेद्भव्यो भारती-मुख-दर्पणः ॥१०॥
इति भट्टारक-श्रीअमरकीर्ति-कृतं यमकाऽष्टकं स्तोत्रं समाप्तम् ॥श्रीः॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अनेकान्त-रस-लहरी

—:०※०:—

[इस स्तम्भके नीचे लेख लिखनेके लिये सभी विद्वानोंको सादर आमन्त्रण है। लेखोंका लक्ष्य वही होना चाहिये जो इस स्तम्भका प्रारम्भ करते हुए व्यक्त किया गया था अर्थात् लेखोंमें अनेकान्त-जैसे गम्भीर विषयको ऐसे मनोरंजक ढंगसे सरल शब्दोंमें समझाया जाय जिससे बच्चे तक भी उसके मर्मको आसानीसे जान सकें, वह कठिन दुर्बोध एवं नीरस विषय न रहकर सुगम-सुखबोध तथा रसीला विषय बन जाय—बातकी बातमें समझा जासके—और जनसाधारण सहजमें ही उसका रसास्वादन करते हुए उसे हृदयङ्गम करने, अपनाने और उसके आधार पर तत्त्वज्ञानमें प्रगति करने, प्राप्त ज्ञानमें समीचीनता लाने, विरोधको मिटाने तथा लोक व्यवहारमें सुधार करनेके साथ-साथ अनेकान्तको जीवनका प्रधान अङ्ग बनाकर सुख-शान्तिका अनुभव करनेमें समर्थ हो सकें। —सम्पादक]

[४]
बड़ा और छोटा दानी

उसीदिन अध्यापक वीरभद्रने दूसरी कक्षामें जाकर उस कक्षाके विद्यार्थियोंकी भी इस विषयमें जाँच करनी चाही कि वे बड़े और छोटेके तत्त्वको, जो कई दिनसे उन्हें समझाया जारहा है, ठीक समझ गये हैं या कि नहीं अथवा कहाँ तक हृदयंगम कर सके हैं, और इसलिये उन्होंने कक्षाके एक सबसे अधिक चतुर विद्यार्थीको पासमें बुलाकर पूछा—

एक मनुष्यने पाँच लाखका दान किया है और दूसरेने दस हजारका; बतलाओ, इन दोनोंमें बड़ा दानी कौन है?

विद्यार्थीने चटसे उत्तर दिया—'जिसने पाँच लाखका दान किया है वह बड़ा दानी है।' इसपर अध्यापकमहोदयने एक गंभीर प्रश्न किया—

'क्या तुम पाँच लाखके दानीको छोटा दानी और दस हजारके दानीको बड़ा दानी कर सकते हो?'

विद्यार्थी—हाँ, कर सकता हूँ।

अध्यापक—कैसे? करके बतलाओ?

विद्यार्थी—मुझे सुखानन्द नामके एक सेठका हाल मालूम है जिसने अभी दस लाखका दान दिया है, उससे आपका यह पाँच लाखका दानी छोटा दानी है। और एक ऐसे दातारको भी मैं जानता हूँ जिसने पाँच हजारका ही दान दिया है, उससे आपका यह दस हजारका दानी बड़ा दानी है। इस तरह १० हजारका दानी एककी अपेक्षासे बड़ा दानी और दूसरेकी अपेक्षासे छोटा दानी है, तदनुसार पाँच लाखका दानी भी एककी अपेक्षासे बड़ा और दूसरेकी अपेक्षासे छोटा दानी है।

अध्यापक—हमारा मतलब यह नहीं जैसा कि तुम समझ गये हो, दूसरोंकी अपेक्षाका यहाँ कोई प्रयोजन नहीं। हमारा पूछनेका अभिप्राय सिर्फ इतना ही है कि क्या किसी तरह इन दोनों दानियोंमेंसे पाँच लाखका दानी दस हजारके दानीसे छोटा और दस हजारका दानी पाँच लाखके दानीसे बड़ा दानी हो सकता है? और तुम उसे स्पष्ट करके बतला सकते हो?

विद्यार्थी—यह कैसे होसकता है? यह तो उसी तरह असंभव है जिस तरह पत्थरकी शिला अथवा लोहेका पानीपर तैरना।

अध्यापक—पत्थरकी शिलाको लकड़ीकी स्लीपर या मोटे तख्तेपर फिट करके अगाध जलमें तिराया जासकता है और लोहेकी लुटिया, नौका अथवा कनस्टर बनाकर उसे भी तिराया जासकता है। जब युक्तिसे पत्थर और लोहा भी पानीपर तैर सकते हैं और इसलिये उनका पानीपर तैरना सर्वथा असंभव नहीं कहा जासकता, तब क्या तुम युक्तिसे दस हजारके दानीको पाँचलाखके दानीसे बड़ा सिद्ध नहीं कर सकते?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यह सुनकर विद्यार्थी कुछ गहरी सोचमें पड़ गया और उससे शीघ्र ही कुछ उत्तर न बन सका। इस-पर अध्यापक महोदयने दूसरे विद्यार्थियोंसे पूछा—'क्या तुममेंसे कोई ऐसा कर सकता है? वे भी सोचते-से रह गये। और उनसे भी शीघ्र कुछ उत्तर बन न पड़ा! तब अध्यापकजी कुछ कड़ककर बोले—

'क्या तुम्हें तत्वार्थसूत्रके दान-प्रकरणका स्मरण नहीं है? क्या तुम्हें नहीं मालूम कि दानका क्या लक्षण है और उस लक्षणसे गिरकर दान दान नहीं रहता? क्या तुम्हें उन विशेषताओंका ध्यान नहीं है जिनसे दानके फलमें विशेषता—कमी-वेशी आती है और जिनके कारण दानका मूल्य कमो-बेश हो जाता अथवा छोटा-बड़ा बन जाता है? और क्या तुम नहीं समझते कि जिस दानका मूल्य बड़ा—फल बड़ा वह दान बड़ा है, उसका दानी बड़ा दानी है; और जिस दानका मूल्य कम—फल कम वह दान छोटा है, उसका दानी छोटा दानी है—दानद्रव्यकी संख्यापर ही दानका छोटा-बड़ापन निर्भर नहीं है?'

इन शब्दोंके आघातसे विद्यार्थि-हृदयके कुछ कपाट खुल गये, उसकी स्मृति काम करने लगी और वह ज़रा चमककर कहने लगा—

'हाँ, तत्वार्थसूत्रके सातवें अध्यायमें दानका लक्षण दिया है और उन विशेषताओंका भी उल्लेख किया है जिनके कारण दानके फलमें विशेषता आती है और उस विशेषताकी दृष्टिसे दानमें भेद उत्पन्न होता है अर्थात् किसी दानको उत्तम-मध्यम-जघन्य अथवा बड़ा-छोटा आदि कहा जा सकता है। उसमें बतलाया है कि 'अनुग्रहके लिये—स्व-पर उपकारके वास्ते—जो अपने धनादिकका त्याग किया जाता है उसे 'दान' कहते हैं और उस दानमें विधि, द्रव्य, दाता तथा पात्रके विशेषसे विशेषता आती है—दानके ढंग, दानमें दिये जानेवाले पदार्थ, दातार-की तत्कालीन स्थिति और उसके परिणाम तथा पानेवालेमें गुणसंयोगके भेदसे दानके फलमें कमी-वेशी होती है[1]। ऐसी स्थितिमें यह ठीक है कि दानका छोटा-बड़ापन केवल दानद्रव्यकी संख्यापर निर्भर नहीं होता, उसके लिये दूसरी कितनी ही बातोंको देखनेकी जरूरत होती है, जिन्हें ध्यानमें रखते हुए द्रव्यकी अधिक संख्यावाले दानको छोटा और अल्प संख्यावाले दानको खुशीसे बड़ा कहा जा सकता है। अतः अब आप कृपाकर अपने दोनों दानियोंका कुछ विशेष परिचय दीजिये जिससे उनके छोटे-बड़ेपनके विषयमें कोई बात ठीक कही जा सके।

अध्यापक—हमें पाँच पाँच लाखके दानी चार सेठोंका हाल मालूम है जिनमेंसे (१) एक सेठ डालचन्द हैं, जिनके यहाँ लाखोंका व्यापार होता है और प्रतिदिन हजारों रुपये धर्मादाके जमा होते हैं, उसी धर्मादाकी रकममेंसे उन्होंने पाँच लाख रुपये एक सामाजिक विद्या-संस्थाको दान दिये हैं और उनके इस दानमें यह प्रधान-दृष्टि रही है कि उस समाजके प्रेमपात्र तथा विश्वासपात्र बनें और लोक-में प्रतिष्ठा तथा उदारताकी धाक जमाकर अपने व्यापारको उन्नत करें। (२) दूसरे सेठ ताराचन्द हैं, जिन्होंने ब्लैक मार्केटद्वारा बहुत धन संचय किया है और जो सरकारके कोप-भाजन बने हुए थे—सरकार उनपर मुकदमा चलाना चाहती थी। उन्होंने एक उच्चाधिकारीके परामर्शसे पाँचलाख रुपये 'गांधी मीमोरियल फंड' को दान दिये हैं और इससे उनकी सारी आपत्ति टल गई है। (३) तीसरे सेठ रामानन्द हैं, जो एक बड़ी मिलके मालिक हैं जिसमें 'वनस्पति-घी' भी प्रचुर परिमाणमें तय्यार होता है। उन्होंने एक उच्चाधिकारीको गुप्तदानके रूपमें पाँच लाख रुपये इसलिये भेंट किये हैं कि वनस्पतिघीका चलन बन्द न किया जाय और न उसमें किसी रंगके मिलानेका आयोजन ही किया जाय। (४) चौथे सेठ विनोदीराम हैं, जिन्हें 'रायबहादुर' तथा 'आनरेरी मजिस्ट्रेट' बननेकी प्रबल इच्छा थी।

१ अनुग्रहार्थं स्वस्याऽतिसर्गो दानम् ॥ ३८ ॥
विधि-द्रव्य-दातृ-पात्र-विशेषात्तद्विशेषः ॥ ३९ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उन्होंने ज़िलाधीश (कलक्टर) से मिलकर उन ज़िलाधीशके नामपर एक हस्पताल (चिकित्सालय) खोलनेके लिये पाँच लाखका दान किया है और वे जिलाधीशकी सफारिशपर रायबहादुर तथा ऑनरेरी मजिस्ट्रेट बना दिये गये हैं।

इसी तरह हमें चार ऐसे दानी सज्जनोंका भी हाल मालूम है जिन्होंने दस दस हज़ारका ही दान किया है। उनमेंसे (१) एक तो हैं सेठ दयाचन्द, जिन्होंने नगरमें योग्य चिकित्सा तथा दवाईका कोई समुचित प्रबन्ध न देखकर और साधारण गरीब जनताको उनके प्रभावमें दुःखित एवं पीडित पाकर अपनी निजकी कमाईमेंसे दस हजार रुपये दानमें निकाले हैं और उस दानकी रकमसे एक धर्मार्थ शुद्ध औषधालय स्थापित किया है जिसमें गरीब रोगियोंकी सेवा-शुश्रुषापर विशेष ध्यान दिया जाता है और उन्हें दवाई मुफ्त दी जाती है। सेठ साहब औषधालयकी सुव्यवस्थापर पूरा ध्यान रखते हैं और अक्सर स्वयं भी सेवाके लिये औषधालयमें पहुँच जाया करते हैं। (२) दूसरे सेठ ज्ञानानन्द हैं, जिन्हें सम्यग्ज्ञान-वर्धक साधनोंके प्रचार और प्रसारमें बड़ा आनन्द आया करता है। उन्होंने अपनी गाढ़ी कमाईमेंसे दस हजार रुपये प्राचीन जैनसिद्धांत-ग्रन्थोंके उद्धारार्थ प्रदान किये हैं और उस द्रव्यकी ऐसी सुव्यवस्था की है जिससे उत्तम सिद्धांत-ग्रन्थ बराबर प्रकाशित होकर लोकका हित कर रहे हैं। (३) तीसरे सज्जन लाला विवेकचन्द हैं, जिन्हें अपने समाजके बेरोजगार (आजीविकारहित) व्यक्तियोंको कष्टमें देखकर बड़ा कष्ट होता था और इसलिये उन्होंने उनके दुःखमोचनार्थ अपनी शुद्ध कमाईमेंसे दस हजार रुपये दान किये हैं। इस द्रव्यसे बेरोजगारोंको उनके योग्य रोजगारमें लगाया जाता है—दुकानें खुलवाई जाती हैं, शिल्पके साधन जुटाये जाते हैं, नौकरियाँ दिलवाई जाती हैं और जब तक आजीविकाका कोई समुचित प्रबन्ध नहीं बैठता तबतक उनके भोजनादिकमें कुछ सहायता पहुँचाई जाती है। इससे कितने ही कुटुम्बोंकी आकुलता मिटकर उन्हें अभयदान मिल रहा है। (४) चौथे सज्जन गवर्नमेंटके पेंशनर बाबू सेवाराम हैं, जिन्होंने गवर्नमेंटके साथ अपनी पेंशनका दस हजार नकदमें समझौता कर लिया है और उस सारी रकमको उन समाजसेवकोंकी भोजनव्यवस्थाके लिये दान कर दिया है जो निःस्वार्थभावसे समाज-सेवाके लिये अपनेको अर्पित कर देना चाहते हैं परन्तु इतने साधन-सम्पन्न नहीं है कि उस दशामें भोजनादिकका खर्च स्वयं उठा सकें। इससे समाजमें निःस्वार्थ सेवकोंकी वृद्धि होगी और उससे कितना ही सेवा एवं लोकहितका कार्य सहज सम्पन्न हो सकेगा। बाबू सेवारामजीने स्वयं अपनेको भी समाजसेवाके लिये अर्पित कर दिया है और अपने दानद्रव्यके सदुपयोगकी व्यवस्थामें लगे हुए हैं।

अब बतलाओ दस-दस हज़ारके इन चारों दानियोंमेंसे क्या कोई दानी ऐसा है जिसे तुम पाँच-पाँच लाखके उक्त चारों दानियोंमेंसे किसीसे भी बड़ा कह सको? यदि है तो कौन-सा है और वह किससे बड़ा है?

विद्यार्थी—मुझे तो यह दस-दस हजारके चारों ही दानी उन पाँच-पाँच लाखके प्रत्येक दानीसे बड़े दानी मालूम होते हैं।

अध्यापक—कैसे? ज़रा समझाकर बतलाओ।

विद्यार्थी—पाँच लाखके प्रथम दानी सेठ डालचन्दने जो द्रव्य दान किया है वह उनका अपना द्रव्य नहीं है, वह वह द्रव्य है जो ग्राहकोंसे मुनाफेके अतिरिक्त धर्मदाके रूपमें लिया गया है, न कि वह द्रव्य जो अपने मुनाफेमेंसे दानके लिये निकाला गया हो। और इसलिए उसमें सैकड़ों व्यक्तियोंका दानद्रव्य शामिल हैं। अतः दानके लक्षणानुसार सेठ डालचन्द उस द्रव्यके दानी नहीं कहे जासकते—दानद्रव्यके व्यवस्थापक होसकते हैं। व्यवस्थामें भी उनकी दृष्टि अपने व्यापारकी रही है और इसलिये उनके उस

Jain Education International   For Personal & Private Use Only   www.jainelibrary.org

दानका कोई विशेष मूल्य नहीं है—वह दानके ठीक फलोंको नहीं फल सकता। पाँच लाखके दानी शेष तीन सेठ तो दानके व्यापारीमात्र हैं—दानकी कोई स्पिरिट, भावना और आत्मोपकार तथा परोपकारको लिये हुए अनुग्रहदृष्टि उनमें नहीं पाई जाती और इसलिए उनके दानको वास्तवमें दान कहना ही न चाहिये। सेठ ताराचन्दने तो ब्लैकमार्केट द्वारा बहुतोंको सताकर कमाये हुए उस अन्याय-द्रव्यको दान करके उसका बदला भी अपने ऊपर चलनेवाले एक मुकदमेको टलानेके रूपमें चुका लिया है और सेठ विनोदीरामने बदलेमें 'रायबहादुर' तथा 'आनरेरी मजिस्ट्रेट' के पद प्राप्त कर लिये हैं अतः पारमार्थिकदृष्टिसे उनके उस दानका कोई मूल्य नहीं है। प्रत्युत इसके, दस-दस हजारके उन चारों दानियोंके दान दानकी ठीक स्पिरिट, भावना तथा स्व-परकी अनुग्रहबुद्धि आदिको लिये हुए हैं और इसलिये दानके ठीक फलको फलने वाले सम्यक् दान कहे जानेके योग्य हैं। इसीसे मैं उनके दानी सेठ दयाचन्द, सेठ ज्ञानानन्द, ला० विवेकचन्द और बाबू सेवारामजीको पाँच-पाँच लाखके दानी उन चारों सेठों डालचन्द, ताराचन्द, रामानन्द और विनोदीरामसे बड़े दानी समझता हूँ। इनके दानका फल हर हालतमें उन तथाकथित दानियोंके दान-फलसे बड़ा है और इसलिये उन दस-दस हजारके दानियोंमेंसे प्रत्येक दानी उन पाँच-पाँच लाखके दानियोंसे बड़ा दानी है।

यह सुनकर अध्यापक वीरभद्रजी अपनी प्रसन्नता व्यक्त करते हुए बोले—'परन्तु सेठ रामानन्दजीने तो दान देकर अपना नाम भी नहीं चाहा, उन्होंने गुप्तदान दिया है और गुप्तदानका महत्व अधिक कहा जाता है, फिर तुमने उन्हें छोटा दानी कैसे कह दिया? जरा उनके विषयको भी कुछ स्पष्ट करके बतलाओ।

विद्यार्थी—सेठ रामानन्दका दान तो वास्तवमें कोई दान ही नहीं है—उसपर दानका कोई लक्षण घटित नहीं होता और इसलिये वह दानकी कोटिमें ही नहीं आता—गुप्तदान कैसा? वह तो स्पष्ट रिश्वत अथवा घूस है, जो एक उच्चाधिकारीको लोभमें डालकर उनके अधिकारोंका दुरुपयोग कराने और अपना बहुत बड़ा लौकिक स्वार्थ सिद्ध करनेके लिये दी गई है और उस स्वार्थसिद्धिकी उत्कट भावनामें इस बातको बिल्कुल ही भुला दिया गया है कि वनस्पतिघीके प्रचारसे लोकमें कितनी हानि होरही है—जनताका स्वास्थ्य कितना गिर गया तथा गिरता जाता है और वह नित्य नई कितनी व कितने प्रकारकी बीमारियोंकी शिकार होती जाती है, जिन सबके कारण उसका जीवन भाररूप होरहा है। उस सेठने सबके दुख-कष्टोंकी ओरसे अपनी आँखें बन्द करली हैं—उसकी तरफसे बूढ़ा मरो चाहे जवान उसे अपनी हत्यासे काम! फिर दानके अंगस्वरूप किसीके अनुग्रह—उपकारकी बात तो उसके पास कहाँ फटक सकती है? वह तो उससे कोसों दूर है। महात्मा-गान्धी जैसे सन्तपुरुष वनस्पतिघीके विरोधमें जो कुछ कह गये हैं उसे भी उसने ठुकरा दिया है और उस अधिकारीको भी ठुकरानेके लिये राजी कर लिया है जो बात-बातमें गांधीजीके अनुयायी होनेका दम भरा करता है और दूसरोंको भी गांधीजीके आदेशानुसार चलनेकी प्रेरणा किया करता है। ऐसा ढोंगी, दम्भी, बगुला-भगत उच्चाधिकारी जो तुच्छ लोभमें पड़कर अपने कर्तव्यसे च्युत, पथसे भ्रष्ट और अपने अधिकारका दुरुपयोग करनेके लिये उतारू होजाता है वह दानका पात्र भी नहीं है। इसतरह परमार्थिक दृष्टिसे सेठ रामानन्दका दान कोई दान नहीं है। और न लोकमें ही ऐसे दानको दान कहा जाता है। यदि द्रव्यको अपनेसे पृथक् करके किसीको दे देने मात्रके कारण ही उसे दान कहा जाय तो वह सबसे निकृष्ट दान है, उसका उद्देश्य बुरा एवं लोकहितमें बाधक होनेसे वह भविष्यमें घोर दुःखों तथा आपदाओंके रूपमें फलेगा। और इसलिये पाँच-पाँच लाखके उक्त चारों दानियोंमें सेठ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रामानन्दको सबसे अधिक निकृष्ट, नीचे दरजेका तथा अधम दानी समझना चाहिये।

अध्यापक—शाबास ! मालूम होता है अब तुम बड़े और छोटेके तत्त्वको बहुत कुछ समझ गये हो। हाँ, इतना और बतलाओ कि जिन चार दानियोंको तुमने पाँच-पाँच लाखके दानियोंसे बड़े दानी बतलाया है वे क्या दस-दस हजारकी समान रकमके दानसे परस्परमें समानदानी हैं, समान फलके भोक्ता होंगे और उनमें कोई परस्परमें बड़ा-छोटा दानी नहीं है ?

विद्यार्थी उत्तरकी खोजमें मन-ही-मन कुछ सोचने लगा, इतनेमें अध्यापकजी बोल उठे—'इसमें अधिक सोचनेकी बात नहीं, इतना तो स्पष्ट ही है कि जब अधिक द्रव्यके दानी भी अल्प द्रव्यके दानीसे छोटे होजाते हैं और दानद्रव्यकी संख्यापर ही दान तथा दानीका बड़ा-छोटापन निर्भर नहीं है तब समान द्रव्यके दानी परस्परमें समान और एक ही दर्जेके होंगे ऐसा कोई नियम नहीं हो सकता—वे समान भी हो सकते हैं और असमान भी। इस तरह उनमें भी बड़े-छोटेका भेद संभव है और वह भेद तभी स्पष्ट हो सकता है जबकि सारी परिस्थिति सामने हो अर्थात् यह पूरी तौरसे मालूम हो कि दानके समय दातारकी कौटुम्बिक तथा आर्थिक आदि स्थिति कैसी थी, किन भावोंकी प्रेरणासे दान किया गया है, किस उद्देश्यको लेकर तथा किस विधि-व्यवस्थाके साथ दिया गया है और जिन्हें लक्ष्य करके दिया गया है वे सब पात्र हैं, कुपात्र हैं या अपात्र अथवा उस दानकी कितनी उपयोगिता है। इन सबकी तर-तमतापर ही दान तथा उसके फलकी तर-तमता निर्भर है और उसीके आधारपर किसी प्रशस्त दानको प्रशस्ततर या प्रशस्ततम अथवा छोटा-बड़ा कहा जा सकता है। जिनके दानोंका विषय ही एक-दूसरेसे भिन्न होता है उनके दानी प्रायः समान फलके भोक्ता नहीं होते और न समान फलके अभोक्ता होनेसे ही उन्हें बड़ा-छोटा कहा जा सकता है। इस दृष्टिसे उक्त दस-दस हजारके चारों दानियोंमेंसे किसीके विषयमें भी यह कहना सहज नहीं है कि उनमें कौन बड़ा और कौन छोटा दानी है। चारोंके अलग-अलग दानका विषय बहुत उपयोगी है और उन सबका अपने अपने दान-विषयमें पूरी दिलचस्पी पाई जाती है।'

अध्यापक वीरभद्रजीकी व्याख्या चल ही रही थी, कि इतनेमें घंटा बज गया और वे यह कहते हुए उठ खड़े हुए कि 'दान और दानीके बड़े-छोटेपनके विषयमें आज बहुत कुछ विवेचन दूसरी कक्षामें किया जा चुका है[1] उसे तुम मोहनलाल विद्यार्थीसे मलूम कर लेना, उससे रही-सही कचाई दूर हो कर तुम्हारा इस विषयका ज्ञान और भी परिपुष्ट हो जायगा और तुम एकान्ताऽभिनिवेशके चक्करमें न पड़ सकोगे।' अध्यापकजीको उठते देखकर सब विद्यार्थी खड़े हो गये और बड़े विनीतभावसे कहने लगे कि 'आज आपने हमारा बहुत बड़ा अज्ञानभाव दूर किया है। अभी तक हम बड़े छोटेके तत्त्वको पूरी तरहसे नहीं समझे थे, लाइनोंद्वारा—सूत्ररूपमें ही कुछ थोड़ा-सा जान पाये थे, अब आपने व्यवहारशास्त्रको सामने रखकर हमें उसके ठीक मार्गपर लगाया है, जिससे अनेक भूलें दूर होंगी और कितनी ही उलझनें सुलझेंगी। इस भारी उपकारके लिये हम आपका आभार किन शब्दोंमें व्यक्त करें वह कुछ भी समझमें नहीं आता। हम आपके आगे सदा नतमस्तक रहेंगे।

वीरसेवामन्दिर कैम्प,
देहली
ता० १५-६-१९४९

जुगलकिशोर मुख्तार

१ देखो, लेख नं० ३ 'बड़ा दानी कौन' 'अनेकान्त' वर्ष ६, कि० ४।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

युक्तिका परिग्रह

(श्रीवासुदेवशरण अग्रवाल)

—❀—

पक्षपातो न मे वीरे न द्वेषः कपिलादिषु।
यस्य स्याद् युक्तिमद्वाक्यं तस्य कार्यः परिग्रहः॥

श्रीहरिभद्रसूरिका यह वाक्य हमारे नये मानस-जगत्का तोरणवाक्य बनाया जासकता है। 'मुझे महावीरकी बातका पक्षपात नहीं, कपिलके साथ वैर नहीं। जिसके वाक्यमें युक्ति है, उसीका ग्रहण करना मुझे इष्ट है।'

'अनेकान्त' के दसवें वर्षके नव प्रकाशनके समय मेरी हार्दिक अभिलाषा है कि जैन-समाज अपने पूर्वजों-की हृदयसम्बन्धी उदारताको पूरी तरह अपनावे। यह युग केवल उदार व्यक्तिके लिये है। संकीर्णताको लेकर जीनेवाले समाजका अन्त हो चुका है। अपने धर्म और समाजके विषयमें जानकारी प्राप्त करो और दूसरोंके प्रति सहिष्णुता, सहृदयता, उदारता, समवाय और सम्मानका भाव रक्खो—यही वर्त-मान कालके सभ्य सुसंस्कृत व्यक्तिका लक्षण है, यही एक सज्जन नागरिकका आदर्श होना चाहिये।

प्राय: हम कछुवेकी तरह अंगोंको समेटकर संकीर्ण बन जाते हैं। दूसरे धर्मोंकी प्रशंसा सुनकर हमारे मनकी पंखुड़ी नहीं खिलती। अपनी स्तुति सुनकर हम हर्षित होते हैं और यही सोचते हैं कि दूसरोंसे हमें अपने धर्मके लिये ही श्लाघाके शब्द मिलते रहें। यह स्थिति अच्छी नहीं। इस समय मनुष्यको बहुश्रुत होनेकी आवश्यक्ता है। जैनधर्म, बौद्धधर्म, हिन्दूधर्म, सभी भारतीय संस्कृतिके अङ्ग हैं। सभी एक मातृभूमिके विचार-तन्तुओंसे रस ग्रहण करके पल्लवित हुए हैं। जैन साहित्यका भंडार अभी हालमें खुलने लगा है। उसमें संस्कृति-की जो अपरिमित सामग्री मिलती है उससे भारतीय इतिहासका ही गौरव बढ़ता है। सच तो यह है कि भारतभूमि अनेक धर्मोंकी धात्री है। विचारोंकी स्वतन्त्रता यहांकी विशेषता है। इस्लाम धर्मके लिये भी भारतकी यही देन है। अन्य देशोंमें राष्ट्री-य संस्कृतिका सर्वापहारी लोप करके इस्लाम फैला, किन्तु भारतभूमिमें उसके नाखूनी पंजे घिस गये और उसने अन्य धर्मोंके साथ मिल-जुलकर रहनेका समझौता किया। इससे उस धर्मका भी कल्याण हुआ और अन्ततोगत्वा भारतभूमिके साथ उसका एक समन्वयात्मक पहलू सामने आया। इसी मानस पृष्ठभूमिमें पिछले कई-सौ वर्षों तक हिन्दूधर्म और इस्लाम संस्कृतिके क्षेत्रमें आगे बढ़ते रहे। दूसरे धर्म तो हिन्दूधर्मके साथ अनायास ही प्रीति-बंधनमें बँध सके। आज भारतकी राष्ट्रीय आत्मा धर्मोंके समन्वयकी ग्राहक है। हमें धर्म और संस्कृतिके प्रति उदासीन होनेकी जरूरत नहीं है। बल्कि धर्मके सदाचारपरायण मार्गसे जीवनका समन्वय और ऐक्य प्राप्त करना आवश्यक है। यही दृष्टिकोण भविष्यके लिये सुरक्षित है। जैन, बौद्ध, हिन्दू, ईसाई और मुसलमान जो अपनेको समन्वय और उदा-रताके साँचेमें नहीं ढाल सकते उनके लिये यश और जीवनके वरदान अत्यन्त परिमित हैं॥

न्यू देहली, ता० २३-६-१९४९

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्री पंडितप्रवर दौलतरामजी
और उनकी साहित्यिक रचनाएँ

[लेखक—पण्डित परमानन्द जैन शास्त्री]

हिन्दी साहित्यिके जैन विद्वानोंमें पं० दौलतरामजीका नाम भी उल्लेखनीय है। आप १८ वीं शताब्दीके उत्तरार्ध और १९वीं शताब्दीके प्रारम्भके प्रतिभा-सम्पन्न विद्वान थे। संस्कृत भाषापर आपका अच्छा अधिकार था। खासकर जैन पुराण ग्रन्थोंके विशिष्ट अभ्यासी और टीकाकार थे। इनके पिताका नाम आनन्दराम था। और यह जयपुर स्टेटके वसवा[1] नामक ग्रामके रहने वाले थे। इनकी जाति खंडेलवाल और गोत्र काशलीवाल था। पंडित जीके मकानके सामने जिन मन्दिर था और आस-पास प्रायः जैनियोंका ही निवास था। और वे जिन पूजन, शास्त्रस्वाध्याय, सामायिक तथा तत्त्वचर्चादि धार्मिक कार्योंमें संलग्न रहते थे। परन्तु रामचन्द्र मुमुक्षुके संस्कृत 'पुण्यास्रव कथाकोष'की टीका प्रशस्ति के अनुसार पं० दौलतरामजीको अपनी प्रारम्भिक अवस्थामें जैनधर्मका विशेष परिज्ञान न था और न उस समय उनकी विशेष रुचि ही जैनधर्मके प्रति थी किन्तु उस समय उनका झुकाव मिथ्यात्वकी ओर हो रहा [illegible] सी बीच उनका कारणवश आगरा जाना हुआ। आगरा में उस समय आध्यात्मिक विद्वान पं० भूधरदासजीकी, जिन्हें पं० दौलतरामजी ने भूधरमल[2] नामसे सम्बोधित किया है अध्यात्म-शैलीका प्रचार था। पं० भूधरदासजी आगरामें स्याहगंजमें रहते थे। और श्रावकोचित षट्कर्मोंमें प्रवीण थे। तथा स्याहगंजके मन्दिरमें ही वे शास्त्र

---

[1] [illegible] पुर स्टेट का एक कस्वा है जो आज भी उसी [illegible] है। यह देहली से अहमदाबाद जाने वाली [illegible] एण्ड सी० आई० आर० रेलवेका स्टेशन है [illegible] शास्त्रभण्डार भी है जो देखने योग्य है।

[2] इनका अधिक प्रचलित नाम पंडित भूधरदास था, यह १८वीं शताब्दीके प्रतिभा-सम्पन्न कवि थे। इन्होंने सम्वत् १७८१ में जिनशतक और सं० १७८९ में पार्श्व-पुराणकी रचना की है। इन दोनों रचनाओंके अतिरिक्त आध्यात्मिक पदसंग्रह भी इन्हींका बनाया हुआ है जो प्रकाशित हो चुका है। ये तीनों ही कृतियाँ बड़ी सुन्दर और सरल हैं। इनकी कविता भावपूर्ण सरल तथा मनमोहक है। इनके सिवाय 'कलियुगचरित' नामके ग्रन्थका और भी पता चला है जो सं० १७५७ में आलमगीर (औरङ्गजेब) के राज्यमें लिखा गया है। जैसा कि उस पुस्तकके निम्न पद्यों से प्रकट है:—

सम्वत् सत्तरहसै सत्तावन जेठ मास उजियारा।
तिथि मावस अरुणाम प्रथम ही वारजु मंगलवारा॥

× × × ×

कही कथा भूधर सुकवि आलमगीरके राज।
नगर मुलकपुर पर बसे दया धर्मके काज॥

पर इस समय उस ग्रन्थकी प्रति सामने न होनेसे यह निश्चय करना कठिन है कि उक्त ग्रन्थ इन्हीं पं० भूधरदास की कृति है या अन्य किसी दूसरे भूधरदासकी।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रवचन किया करते थे। आध्यात्म ग्रन्थोंकी सरस चर्चामें उन्हें विशेष रस आता था। उस समय आगरेमें साधर्मी भाइयोंकी एक शैली थी जिसे आध्यात्म शैलीके नामसे उल्लेखित किया जाता था। और जो मुमुक्षु जीवोंको तत्त्वचर्चादि सत्कार्योंमें अपना पूरा योग देती थी। यह आध्यात्मशैली वहाँ विक्रमकी १७वीं शताब्दीसे बराबर चली आरही थी उसीकी वजहसे आगरावासी लोक-हृदयोंमें जैनधर्म का प्रभाव अङ्कित होरहा था। उस समय इस शैली में हेमराज, सदानन्द, अमरपाल, विहारीलाल, फतेचन्द, चतुर्भुज और ऋषभदासके नाम खासतौरसे उल्लेखनीय हैं[1]। उनमें से ऋषभदासजीके उपदेशसे पंडित दौलतरामजीको जैनधर्म की प्रतीति हुई थी और वह मिथ्यात्वसे हटकर सम्यक्त्वरूपमें परिणत हो गई थी। इसीसे पंडित जीने भगवान ऋषभदेवका जयगान करते हुए उनके दासको सुखी होनेकी कामना व्यक्त की है। जैसा कि उनके पुण्यास्रवकथाकोषटीका प्रशस्तिगत निम्न दो पद्योंसे स्पष्ट है:—

ऋषभदास के उपदेशसौं हमें भई परतीत।
मिथ्या मतको त्यागकैं लगी धरमसौं प्रीत॥
ऋषभदेव जयवंत जग सुखी होहु तसुदास।
जिन हमको जिनमत विषैं कियौ महा जुगदास॥

पंडित दौलतरामजीको आगरेमें रामचन्द्र मुमुक्षु के 'पुण्यास्रव कथाकोष' नामके कथा ग्रन्थको सुननेका अवसर मिला था और जिसे सुनकर उन्हें अत्यंत सुख हुआ, तथा उसकी भाषा टीका बनाई। उक्त कथाकोषकी यह भाषा टीका वि० सं० १७७७ में समाप्त हुई[2]। इसके बाद किसी समय[3] पण्डित दौलतरामजी उदयपुर गए। उदयपुरमें पण्डितजी जयपुरके तत्कालीन राजा सवाई जयसिंह और उनके पुत्र माधवसिंहजीके वकील अथवा मन्त्री थे और उनके संरक्षणका कार्य भी आप ही किया करते थे। उस समय उदयपुरमें राणा जगतसिंह जी का राज्य था, उनकी पण्डितजी पर विशेष कृपादृष्टि रहती थी। और वे उन्हें अपने पास ही में रखते थे। जैसा कि उनकी सं० १७६८ में रचित 'अध्यात्म बारहखड़ी' की प्रशस्ति के निम्न पद्यों से प्रकट है:—

बसुवा का वासी यहै अनुचर जय को जानि।
मंत्री जयसुत को सही जाति महाजन जानि॥
जय को राखै राण पै रहै उदयपुर मांहि।
जगतसिंह कृपा करै राखै अपने पांहि॥

उसके अतिरिक्त सं० १७६५ में रचित 'क्रियाकोष' की प्रशस्तिमें भी वे अपनेको जयसुतका मन्त्री और जयका अनुचर व्यक्त करते हैं[4]। चूंकि राणा

१ देखो पुण्यास्रव-टीका-प्रशस्ति।

२—संवत सत्रहसौ विख्यात, तापरि धरि सत्तरि अरु सात।
भादव मास कृष्ण पख जानि, तिथि पांचें जानों परवानि।२८।
रविसुतको पहलो दिन जोयं, अरु सुरुगुरु के पीछैं होय।
बार है गनि लीज्यौ सही, ता दिन ग्रन्थ समापत सही।२९।

३—सन् १७२१ (वि० सं० १७८६) में जयपुर नरेश सवाई जयसिंहजी माधोसिंह और उनकी माता चन्द्रकुंवरि को लेकर उदयपुर गये हैं और उनके लिये 'रामपुरा' का परगना दिलाया गया है।—देखो राजपूतानेका इतिहास चतुर्थ खण्ड।

इससे मालूम होता है कि सवाई जयसिंहजीने इसी समय सन् १७२१ (वि० सं० १७८६) में पं० दौलतराम-जीको भी उदयपुर रक्खा होगा, इससे पूर्व वे जयपुर या अन्यत्र रहकर राज्य कार्य करते होंगे।

४—"आनन्द सुत जयसुतको मन्त्री,
जयको अनुचर जाहि कहैं।"

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जगतसिंहजी द्वितीयका राज्य संवत् १७६० से १८०८ तक रहा है। अतः पण्डितजीका सं० १७६८में जगतसिंहजीकी कृपा का उल्लेख करना समुचित ही है। क्योंकि वे वहां सं० १७६५ से पूर्व पहुंच चुके थे।

पण्डितजीने वहां राजकार्योंका विधिवत् संचालन करते हुए जैन ग्रन्थोंका अच्छा अभ्यास किया और अपने दैनिक नैमत्तिक कार्योंके साथ गृहस्थोचित देवपूजा और गुरु उपासनादि षट्कर्मोंका भी भलीभाँति पालन किया। साथ ही वहाँके जैनियोंमें धार्मिक संस्कारोंकी दृढ़ता लानेके लिये शास्त्र स्वाध्याय और पठन-पाठनका कार्य भी किया। जिससे उस समय वहांके स्त्री-पुरुषोंमें धर्मका खासा प्रचार हो गया था[1]। और वे अपने आवश्यक कर्तव्योंके साथ स्वाध्याय, तत्त्वचिंतन और सामयिकादि कार्योका उत्साहके साथ विधिवत् अनुष्ठान करते थे। इसके अतिरिक्त उन्होंने वहाँ रहते हुए आचार्य वसुनन्दीके उपासकाध्ययन (वसुनन्दीश्रावकाचार) की एक टब्बा टीकाका निर्माण भी किया था जिसे उन्होंने वहाँके निवासी सेठ वेलजीके अनुरोधसे पूर्ण किया था[2]।

यह (टब्बा टबा टीका कब बनी, यह ठीक मालूम नहीं हो सका। पर जान पड़ता है कि इसका निर्माण भी सं० १८०८ से पूर्व ही हुआ है, क्योंकि इसके बाद उनका उदयपुर रहना निश्चित नहीं है।

इसके सिवाय ऊपर उल्लिखित उन दोनों ग्रन्थोंका भी प्रणयन किया जिनमें 'क्रियाकोष' सं० १७६५ की रचना है और उसमें जैन श्रावकोंकी ५३ क्रियाओंका विस्तृत वर्णन दिया हुआ है। और दूसरा ग्रन्थ 'अध्यात्म बारहखड़ी' है जिसे उन्होंने संवत् १७६८ में समाप्त किया था[3]। इस ग्रन्थकी प्रशस्ति में उस समयके उदयपुर निवासी कितने ही साधर्मी सज्जनोंका नामोल्लेख किया गया है जिससे पण्डित जीके प्रयत्नसे तत्कालीन उदयपुरमें साधर्मी सज्जन गोष्ठी और तत्त्वचर्चादिका अच्छा समागम एवं प्रभाव होगया था। अध्यात्मबारहखड़ी की प्रशस्ति में दियेहुए साधर्मी सज्जनोंके नाम इस प्रकार हैं:—पृथ्वीराज, चतुर्भुज, मनोहरदास, हरिदास, वखतावरदास, कर्णदास और पण्डित चीमा इन सबकी प्रेरणा एवं अनुरोधसे उक्त ग्रन्थकी रचना की गई है जैसाकि ग्रन्थप्रशस्तिगत निम्न पद्योंसे मालूम होता है:—

उदियापुर में रुचिधरा कैयक जीव सुजीव।
पृथ्वीराज चतुर्भुजा श्रद्धा धरहिं अतीव ॥५॥
दास मनोहर अर हरी द्वै वखतावर कर्ण।
केवल केवल रूपकों, राखैं एकहि सर्ण ॥६॥
चीमा पण्डित आदि ले, मनमें धरिउ विचार।
बारहखड़ी हो भक्ति-मय, ज्ञानरूप अविकार ॥७॥
भाषा छन्दनि माहि जो, अक्षर मात्रा लेय।
प्रभुके नाम बखानिये, समुझें बहुत सुनेय ॥८॥
इह विचार कर सब जना, उर धर प्रभु की भक्ति।
बोले दौलतरामसौं करि सनेह रस व्यक्ति ॥९॥

१—देखो रायमल्लका परिचय, वीरवाणी अङ्क २।

२—उदयापुरमें कियौ वखान, दौलतराम आनन्द सुत जान।
वांच्यो श्रावक-वृत्त विचार, वसुनन्दी गाथा अविकार ॥
बोले सेठ वेलजी नाम, सुन नृप मंत्री दौलतराम।
टबा होय जो गाथा तनो, पुण्य ऊपजै जियको घनो ॥
सुनिके दौलत वैन सुवैन, मन भरि गायो मारग जैन।
—टबा टीका प्रशस्ति।

३—संवत सत्रहसौ अट्ठाणव, फागुनमास प्रसिद्धा।
शुक्ल पक्ष दुतिया उजयारा, भायो जगपति सिद्धा ॥३०॥
जबै उत्तराभाद्र नक्षत्रा, शुक्लजोग शुभकारी।
बालव नाम करण तब वरतै, गायो ज्ञान विहारी ॥३१॥
एक मुहूरत दिन जब चढ़ियौ, मीन लगन तब सिद्धा।
भगतिमाल त्रिभुवन राजाकौं, भेंट करी परसिद्धा ॥३२॥
—अध्यात्म बारहखड़ी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बारहखड़ी करिये भया, भक्ति प्ररूप अरूप।
अध्यातमरसकी भरी, चर्चा रूप सुरूप ॥१०॥

इस तरह पण्डित दौलतरामजीका अधिकांश समय धर्म ध्यानपूर्वक सज्जन गोष्ठीमें या ग्रन्थके अध्ययन, मनन, ग्रन्थ निर्माण या टीकादिकार्यमें व्यतीत होता था। पण्डितजीका हृदय उदार और दयालु था, उनका रहन सहन सादा था, उनकी पवित्र भावना जैनधर्मके अमर तत्त्वोंकी श्रद्धा एवं आस्थासे सराबोर थी। इस तरह राज्यादिकार्योंके नियमित समयसे बचा हुआ शेष समय प्रायः तत्त्वोचिंतन और सामायिकादि कार्योंके अनुष्ठानमें व्यतीत होता था। पंडितजीका खास गुण यह था कि वे अपने उत्तरदायित्वका पूरा पूरा ध्यान रखते थे और कार्यको निर्विघ्न सम्पन्न करनेमें अपना पूरा योग देते थे। इसीसे राजकार्यमें उनका महत्त्वपूर्ण स्थान था, और राज्य-कार्यकर्ताओंके साथ मैत्री-सम्बन्ध भी था। उस समय जयपुरके राजकीय क्षेत्रमें अधिकाँश जैन ऊँचे ऊँचे पदोंपर प्रतिष्ठित थे और राज्य को सर्वप्रकारसे सम्पन्न बनानेमें अपना सौभाग्य मानते थे। इस तरह उदयपुरमें कार्य करते हुए उन्हें काफी समय हो चुका था, उदयपुरसे वे कब जयपुर आये। इस सम्बन्धमें निश्चय पूर्वक तो कुछ नहीं कहा जा सकता। पर इतना जरूर मालूम होता है कि वे संवत् १८०६ या १८०८ तक ही उदयपुरमें रहे हैं, क्योंकि सवाई जयसिंहके सुपुत्र माधवसिंह जीके बालक हो जानेपर संवत् १८०६ या १८०७ में जयपुर की राजगद्दीके उत्तराधिकारका विवाद छिड़ा तब जयपुर नरेश ईश्वरीसिंहजीको विषपान द्वारा देहोत्सर्ग करना पड़ा था; क्योंकि ईश्वरीसिंहजीमें उस समय इतनी सामर्थ्य नहीं थी कि वे मेवाड़ाधीश राणा जगतसिंहजी और महाराष्ट्र नेता होल्कर के समक्ष विजय प्राप्त कर सकें। अतएव उन्हें मजबूर होकर आत्मघातके कार्यमें प्रवृत्त होना पड़ा।

ईश्वरीसिंहजीके बाद माधवसिंहजीको जयपुर का उत्तराधिकार प्राप्त हुआ। इनके सत्तारूढ़ हो जाने पर सम्भवतः सम्वत् १८०८ या १८०९ में पं० दौलतरामजी उदयपुरसे जयपुर आगए होंगे; क्योंकि उनका वहांका कार्यक्रम प्रायः समाप्त हो गया था। और जिनके वे मन्त्री थे वे भी अब जयपुराधीश थे, तब मन्त्रीका उदयपुरमें रहना किसी तरह भी सम्भव प्रतीत नहीं होता। अतः पं० दौलतरामजी उदयपुरसे जयपुरमें आकर ही रहने और कार्य करने लगे होंगे। सम्वत् १८२१ की ब्र० रायमल्लजीकी पत्रिकासे ज्ञात होता है कि उस समय उसमें पद्मपुराण की २० हजार श्लोक प्रमाण टीकाके बनजाने की सूचना दी हुई है, इतनी बड़ी टीकाके निर्माण में कमसे कम चार-पांच वर्षका समय लग जाना कुछ अधिक नहीं है। टीकाका शेष भाग बादमें लिखा गया है, और इस तरह वह टीका वि० सम्वत् १८२३ में समाप्त हुई है। यह टीका जयपुरमें ही ब्रह्मचारी रायमल्ल की प्रेरणा एवं अनुरोध से बनाई गई है, उसीसे टीकाकारने ब्रह्मचारी रायमल्लका निम्न शब्दोंमें उल्लेख किया है।

रायमल्ल साधर्मी एक, जाके घटमें स्व-पर-विवेक।
दयावान गुणवन्तसुजान, परउपगारी परमनिधान॥

इस पद्यसे ब्रह्मचारी रायमल्लके व्यक्तित्वका कितना ही परिचय मिल जाता है और उनकी विवेकशीलता, क्षमा और दया आदि गुणोंका परिचय भी प्राप्त हो जाता है। पं० टोडरमलजीने उन्हें विवेकसे धर्म का साधक बतलाया है[1]। वे विवेकी क्षमावान, बालब्रह्मचारी, दयालु और अहिंसक थे, उनमें मानवता टपकती थी, वे जैनधर्मके श्रद्धानी थे। और उसके पवित्रतम प्रचारकी अभिलाषा उनकी रगरगमें पाई जाती थी और वे शक्तिभर उसके प्रचारका प्रयत्न भी करते थे। प्राचीन जैनग्रन्थोंके

१—रायमल्ल साधर्मी एक, धर्म सधैया सहित विवेक।
सो नाना विध प्रेरक भयौ, तब यहु उत्तम कारज थयौ॥
—लब्धिसार प्रशस्ति।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उद्धारके साथ उनकी हिन्दी टीकाओंके कराने तथा उन्हें अन्यत्र भिजवानेका प्रयत्न भी करते थे। समयसारादि अध्यात्मग्रन्थोंकी तत्त्वचर्चामें उन्हें बड़ा रस आता था, और वे उससे आनन्दविभोर हो उठते थे। सं० १८२१ की लिखी एक निमंत्रण पत्रिका से उनकी कर्त्तव्यपरायणता और लगनका सहज ही आभास हो जाता है। वे विद्वानोंको कार्यके लिये स्वयं प्रेरित करते थे और दूसरोंसे भी प्रेरणा दिलवाते थे। उनकी प्रेरणाके फलस्वरूप जो मधुरफल लगे उससे पाठक परिचित ही हैं।

पद्मपुराण टीका—

पुण्यास्रवकथाकोष, क्रियाकोष, अध्यात्म बारह खड़ी और वसुनंदिके उपासकाध्ययनकी टब्बा टीकाके अतिरिक्त पाँच या छह टीका ग्रंथ और हैं जो उक्त पंडित दौलतरामजीकी मधुर लेखनीके प्रतिफल हैं। आज पंडितजी अपने भौतिक शरीरमें इस भूतल पर नहीं हैं, परन्तु उनकी अमर कृतियाँ जैनधर्मप्रचार की भावनाओंसे ओत-प्रोत हैं, उनकी भाषा बड़ी ही सरल तथा मनमोहक है। इन टीका ग्रंथों की भाषा ढूंढाहड़ देश की तत्कालीन हिन्दी गद्य है जो ब्रजभाषाके प्रभावसे प्रभावित है, उसमें कितना माधुर्य और कितनी सरलता है यह उनके अनुशीलनसे सहज ही ज्ञात हो जाता है। उन्नीसवीं शताब्दी की उनकी भाषा कितनी परिमार्जित और मुहावरेदार है यह उसके निम्न उदाहरण से स्पष्ट है:—

"हे देव ! हे विज्ञानभूषण ! अत्यंत वृद्ध अवस्थाकरिहीन शक्ति जो मैं सो मेरा कहा अपराध ? मो पर आप क्रोध करो सो मैं क्रोधका पात्र नाहीं, प्रथम अवस्था विषैं मेरे भुज हाथीके सुंड समान हुते, उरस्थल प्रबल था अर जांघ गजबन्धन तुल्य हुतीं, अर शरीर दृढ़ हुता अब कर्मनिके उदयकरि शरीर अत्यंत शिथिल होय गया। पूर्वे ऊँची नीची धरती राजहंस की न्याईं उलंघ जाता, मनवांछित स्थान पहुंच जाता। अब अस्थानकसे उठा भी नहीं जाय है। तुम्हारे पिताके प्रसादकरि मैं यह शरीर नानाप्रकार लड़ाया था सो अब कुमित्र की न्याईं दुःख का कारण होय गया, पूर्वे मुझे वैरीनिके विदारने की शक्ति हुती सो अब लाठीके अवलम्बनकरि महाकष्टसे फिरूँ हूं। बलवान पुरुषनिकरि खींचा जो धनुष वा समान वक्र मेरी पीठ हो गई है अर मस्तकके केश अस्थिसमान श्वेत होय गये हैं अर मेरे दांत गिर गये, मानो शरीर का आताप देख न सकें। हे राजन् ! मेरा समस्त उत्साह विलय गया, ऐसे शरीरकरि कोई दिन जीऊँहूं सो बड़ा आश्चर्य है। जरासे अत्यंत जर्जर मेरा शरीर सांझसकारे विनश जायगा। मोहि मेरी कायाकी सुध नाहीं तो और सुध कहां से होय। पके फल समान जो मेरा तन ताहि काल शीघ्र ही भक्षण करेगा; मोहि मृत्यु का ऐसा भय नाहीं जैसा चाकरी चूकने का भय है, अर मेरे आपकी आज्ञा ही का अवलंबन है और अवलम्बन नाहीं, शरीरकी अशक्तिता करि विलंब होय ताकूँ कहा करूँ। हे नाथ मेरा शरीर जराके अधीन जान कोप मत करो कृपा ही करो, ऐसे वचन खोजेके राजा दशरथ सुनकर वामा हाथ कपोलके लगाय चिन्तावान होय विचारता भया, अहो ! यह जल की बुद्‌बुदा समान असार शरीर क्षणभंगुर है अर यह यौवन बहुत विभ्रमको धरै संध्याके प्रकाश समान अनित्य है अर अज्ञान का कारण है, विजलीके चमत्कार समान शरीर अर सम्पदा तिनके अर्थ अत्यंत दुःखके साधन कर्म यह प्राणी करै है, उन्मत्त स्त्रीके कटाक्ष समान चंचल, सर्पके फण समान विषके भरे, महातापके समूहके कारण ये भोग ही जीवनकौं ठगैं हैं, तातैं महा ठग हैं, यह विषय विनाशीक, इनसे प्राप्त हुआ जो दुःख सो मूढोंको सुखरूप भासै है, ये मूढ जीव विषयों की अभिलाषा करैं हैं अर इनको मनवांछित विषय दुष्प्राप्य हैं, विषयोंके सुख देखने मात्र मनोज्ञ हैं, अर इनके फल अति कटुक हैं, ये

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विषय इन्द्रायणके फल समान हैं, संसारी जीव इनको चाहैं हैं सो बड़ा आश्चर्य है, जे उत्तमजन बिषयों को विषतुल्य जानकरि तजैं हैं अर तप करैं हैं ते धन्य हैं, अनेक विवेकी जीव पुण्याधिकारी महाउत्साहके धरणहारे जिन शासनके प्रसादसे प्रबोधकों प्राप्त भये हैं, मैं कब इन विषयों का त्याग कर स्नेह रूप कीचसे निकस निवृत्ति का कारण जिनेन्द्रका मार्ग आचरूँगा। मैं पृथ्वीकी बहुत सुखसे प्रतिपालना करी, अर भोग भी मनवांछित भोगे अर पुत्र भी मेरे महा-पराक्रमी उपजे। अब भी मैं वैराग्यमें विलम्ब करूं तो यह बड़ा विपरीत है, हमारे वंश की यही रीति है कि पुत्र को राज-लक्ष्मी देकर वैराग्यको धारण कर महाधीर तप करनेको वनमें प्रवेश करे। ऐसा चिन्तवन कर राजा भोगनितैं उदासचित्त कई एक दिन घरमें रहे।"

—पद्मपुराण टीका पृ० २६५—६

इसमें बतलाया गया है कि राजा दशरथने किसी अत्यंत वृद्ध खोजेके हाथ कोई वस्तु रानी केकईके पास भेजी थी जिसे वह शरीर की अस्थिरतावश देरसे पहुंचा सका, जबकि वही वस्तु अन्य रानियोंके पास पहले पहुंच चुकी थी। अतएव केकई ने राजा दशरथसे शिकायत की, तब राजा दशरथ उस खोजे पर अत्यंत क्रुद्ध हुए, तब उस खोजेने अपने शरीर की जर्जर अवस्थाका जो परिचय दिया है उससे राजा दशरथको भी सांसारिक-भोगोंसे उदासीनता हो गई, इस तरह इन कथा पुराणादि साहित्यके अध्ययनसे आत्मा अपने स्वरूप की ओर सन्मुख हो जाता है।

ऊपरके उद्धरणसे जहाँ इस ग्रंथकी भाषाका सामान्य परिचय मिलता है वहाँ उसकी मधुरता एवं रोचकताका भी आभास हो जाता है। पंडित दौलतरामजीने पांच छह ग्रंथोंकी टीका बनाई है। पर उन सबमें सबसे पहले पुण्यास्रवकथाकोषकी और सबसे बादमें हरिवंशपुराणकी टीका बनकर समाप्त हुई है अर्थात् सं० १७७७ से लेकर सं० १८२६ तक ५२ वर्ष का अन्तराल इन दोनों टीका ग्रंथोंके मध्य का है।

इस टीका ग्रंथ का मूल नाम 'पद्मचरित' है। उसमें सुप्रसिद्ध पौराणिक राम, लक्ष्मण और सीता के जीवन की झांकी का अनुपम चित्रण किया गया है। इसके कर्ता आचार्य रविषेण हैं जो विक्रम की आठवीं शताब्दीके द्वितीय चरणमें (वि० सं० ७३३ में) हुए हैं। यह ग्रंथ अपनी सानीका एक ही है। इस ग्रंथकी यह टीका श्री ब्रह्मचारी रायमल्लके अनुरोधसे संवत् १८२३ में समाप्त हुई है[1]। यह टीका जैनसमाजमें इतनी प्रसिद्ध है कि इसका पठन-पाठन प्रायः भारतवर्षके विभिन्न नगरों और गावों में जहाँ जहाँ जैन वस्ती हैं वहांके चैत्यालयोंमें और अपने घरोंमें होता है। इस ग्रन्थकी लोकप्रियता का इससे बड़ा सुबूत और क्या हो सकता है कि इसकी दश दश प्रतियाँ तक कई शास्त्रभंडारोंमें देखी गई हैं। सबसे महत्वकी बात तो यह है कि इस टीका को सुनकर तथा पढ़कर अनेक सज्जनों की श्रद्धा जैनधर्ममें सुदृढ़ हुई है और अनेकों की चलित श्रद्धा को दृढ़ता भी प्राप्त हुई है। ऐसे कितने ही उदाहरण दिये जा सकते हैं जिन्होंने इस टीका ग्रन्थके अध्ययनसे अपने को जैनधर्ममें आरूढ़ किया है। उन सबमें स्व० पूज्य बाबा भागीरथजी वर्णी का नाम खासतौरसे उल्लेखनीय है जो अपनी आदर्श त्यागवृत्तिके द्वारा जैनसमाजमें प्रसिद्धि को प्राप्त हो चुके हैं। आप अपनी बाल्यावस्थामें जैन-धर्मके प्रबल विरोधी थे और उसके अनुयायियों तक को गालियाँ भी देते थे; परन्तु दिल्लीमें जमुना स्नान को रोजाना जाते समय एक जैनसज्जन का मकान जैनमंदिरके समीप ही था, वे प्रतिदिन प्रातः-काल पद्मपुराण का स्वाध्याय किया करते थे। एक दिन आपने उसे खड़े होकर थोड़ी देर सुना और

१ संवत् अष्टादश सतजान, ताऊपर तेईस बखान।
शुक्लपक्ष नौमी शनिवार, माघमास रोहिणी रिखिसार॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई, और विचार किया कि यह तो रामायण की ही कथा है मैं इसे जरूर सुनूंगा और पढ़ने का अभ्यास भी करूंगा, उस दिनसे वे रोजाना उसे सुनने लगे और थोड़ा थोड़ा पढ़ने का अभ्यास भी करने लगे। यह सब कार्य उन्हीं सज्जनके पास किया, अब आपकी रुचि पढ़ने तथा जैनधर्मका परिचय प्राप्त करनेकी हुई और उसे जानकर जैनधर्ममें दीक्षित हो गए। वे कहते थे कि मैंने पद्मपुराणका अपने जीवन में कई बार स्वाध्याय किया है वह बड़ा महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इस तरह न मालूम उक्त कथा ग्रन्थ और उसकी इस टीकासे जैनधर्मका प्रभाव तथा लोगोंकी श्रद्धाका कितना संरक्षण एवं स्थिरीकरण हुआ है। इसी तरह पं० दौलतरामजी की अन्य आदिपुराण, हरिवंशपुराणकी टीकाएँ हैं जो कि उसी मधुर एवं प्रांजल भाषा को लिये हुए हैं और जिनके अध्ययन से हृदय गद्गद् हो जाता है और श्रद्धासे भर जाता है। इसका प्रधान कारण टीकाकार की आन्तरिक भद्रता, निर्मलता, सुश्रद्धा और निष्काम साहित्य सेवा है। पंडितजीके टीका ग्रन्थोंसे जैनसमाजका बड़ा उपकार हुआ है, और उनसे जैनधर्मके प्रचार में सहायता भी मिली है।

पद्मपुराणकी टीकाके एक वर्षके बाद आदि पुराणकी टीका भी पूर्ण हुई जिसे वे पहलेसे कर रहे थे। इस टीकाके बनानेका अनुरोध करने वालोंमें ब्रह्मचारी रायमल्ल का नाम तो उल्लेखनीय है ही, किन्तु उन्होंने अन्य सज्जनोंसे भी प्रेरणा कराई है। रतनचन्द मेघडिया, पंडित टोडरमलजीके हरिचन्द और गुमानीराय नामके दोनों पुत्रों बालब्रह्मचारी देवीदासजी, जिन्होंने आचार्य नरेन्द्रसेनके सिद्धान्तसार ग्रन्थकी टीका सं० १३३८ में बनाकर समाप्त की है, और जयपुर राज्यके तत्कालीन सुयोग्य दीवान रतनचन्दजी इन सबके अनुरोधसे यह टीका सं० १८२४ में समाप्त हुई है।

पं० टोडरमलजीके असमयमें दिवंगत होजाने से 'पुरुषार्थसिद्ध्युपायकी उनकी अधूरी टीकाको भी आपने उक्त रतनचन्दजी दीवानके अनुरोधसे सं० १८२७ में पूर्ण किया है और इसके बाद हरिवंशपुराण की टीका उक्त रायमल्लजीकी प्रेरणा तथा अन्य साधर्मी भाइयोंके अनुरोधसे सं० १८२९ में राजा पृथ्वीसिंहके राज्यकालमें समाप्त हुई है। इनके सिवाय परमात्म-प्रकाशकी टीका कब बनी यह कुछ मालूम नहीं हो सका। बहुत संभव है कि वह इनसे पूर्व बनी हो। इन टीका ग्रन्थोंके अतिरिक्त श्रीपालचरितकी टीका भी इनकी बनाई हुई बतलाई जाती है परन्तु वह मेरे देखनेमें अब तक नहीं आई, इसीसे यहाँ उस पर कोई विचार नहीं हो सका।

वीर सेवा मन्दिर, सरसावा

ता० १९—६—४८

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कवि पद्मसुंदर और दि० श्रावक रायमल्ल

[लेखक—श्री अगरचन्द नाहटा]

कवि पद्मसुन्दरका परिचय मैंने अनेकान्तके वर्ष ४ अं० ८ में दिया था। उसके पश्चात् अनेकान्त वर्ष ७ अं० ५-६ में श्रीयुत पं० नाथूरामजी प्रेमी का एक लेख "पं० पद्मसुन्दरके दो ग्रन्थ" शीर्षक प्रकाशित हुआ[1] है। इस लेखमें आपने भविष्यदत्त चरित्र और रायमल्लाभ्युदय ग्रन्थ का परिचय देनेके साथ साथ इन ग्रन्थों का निर्माण जिन उदार चरित्र विद्याप्रेमी दि० श्रावक अग्रवाल—गोइलगोत्रीय चौधरी रायमलके अनुरोधसे हुआ है उनके वंशका भी परिचय, जो कि इन ग्रन्थों की प्रशस्तियोंमें पाया जाता है दिया है। पर प्रेमीजीको प्राप्त भविष्यदत्त चरित्रकी प्रतिका अंतिम पत्र नहीं मिलनेसे उक्त वंशकी प्रशस्ति अधूरी रह गई थी। कुछ दिन हुए मुझे तीर्थयात्राके प्रवासमें पालणपुरके श्वेताम्बर जैनभंडारके अवलोकन का सुअवसर प्राप्त हुआ था। वहाँ पद्मसुन्दरकी पार्श्वनाथ चरित्र[2] की प्रति उपलब्ध हुई थी, जिसके अंतमें भी वही प्रशस्ति पूर्ण प्राप्त हुई है। अतः इस लेखमें उसे प्रकाशित किया जारहा है। प्रेमीजी द्वारा प्रकाशित प्रशस्तिमें भट्टारक परम्पराके कुछ नाम छूट गए हैं एवं कहीं २ पाठ भी अशुद्ध छपा है। उसका भी इस प्रशस्तिसे संशोधन हो जाता है एवं पार्श्वनाथचरित्रका रचना काल भी जो अभी तक अज्ञात था, निश्चित हो जाता है। लेखन प्रशस्तिसे एक और भी महत्वपूर्ण बातका पता चलता है वह यह है कि प्रेमीजीका प्रकाशित पुष्पिका लेख सं० १६१५ के फाल्गुन सुदी ७ बुधवारका है उसमें रायमल्लके ३ पुत्रोंका उल्लेख है और यह प्रशस्ति सं० १६१७ [illegible] चैत्र वदी १०की लिखित है उसमें आपके ५ पुत्रोंका उल्लेख है अर्थात् इन २ वर्षोंमें उनके २ और पुत्र भी हो चुके थे। इन पुत्रोंमें से प्रथम पुत्रकी पत्नीका ही इसमें उल्लेख है अतः अन्य पुत्र अवस्थामें छोटे थे, जान पड़ता है। प्राप्त पुष्पिका लेखके अनुसार भट्टारक परंपरा एवं रायमल्लकी वंशपरम्पराकी तालिका इस प्रकार ज्ञात होती है।

काष्ठा संघ, माथुरान्वय पुष्करगण

भट्टारक—उद्धरसेन
|
देवसेन
|
विमलसेन
|
धर्मसेन
|
भावसेन
|
सहस्रकीर्ति
|
गुणकीर्ति
|

|
यशःकीर्ति
|
मलयकीर्ति
|
गुणभद्रसूरि
|
भानुकीर्ति
|
कुमारसेन

१—प्रस्तुत लेखमें आपने पद्मसुन्दरजीके दि० पांडे होनेकी कल्पना की थी पर यह लिखते समय उन्हें मेरा लेख स्मरण नहीं रहा इसीलिये की थी। जब मैंने आपको अपने लेख पढ़ने को सूचित किया तो उत्तरमें आपने उसका संशोधन कर लिया।

२—इसका रचना काल अभीतक निश्चित नहीं था, विन्टर नीजने Indian Literature V. II. P. ५१६ में इसका समय १६२२ लिखा था पर मुझे इसकी १६१६ की लिखित प्रति उपलब्ध होनेसे मैंने इसका उल्लेख अपने पूर्व लेखमें किया था पर पालणपुरकी प्रतिसे वह सं० १६१५ निश्चित हो जाता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चौधरी रायमल्लकी वंश परम्परा—

अग्रोतान्वय-गोयलगोत्र

चौधरी छाजू

१ हाल्हा २ वूढणु ३ नरपालु ४ नरसिंघु ५ भोजा

(पत्नी मदनाही)

१ नानू (पत्नी ओढरही) २ क्रुतिचन्द ३ सहणपालु (पत्नी गाल्हाही २ रामाही)

१ सुखमलु २ पहाड़मलु ३ जसमलु (पत्नी पोखणही)

१ रायमल्ल (पत्नी १ ऊधाही २ मीनाही) भवानीदास (पत्नी माणिकही)

१ अमीचन्द (जेठमलही) २ उदैसिंधु ३ सालिवाहणु ४ धमदास ५ अनन्तदास

मेरे पूर्व लेखके पश्चात् पद्मसुन्दरजीका 'अकबर शाहि शृङ्गार दर्पण' ग्रन्थ बीकानेर राजकी गंगा ओरियन्टल सीरीजसे प्रकाशित हो चुका है उसमें आयेहुए वर्णनके अनुसार इस ग्रन्थका रचना काल प्रायः सं० १६१७ (अर्थात् अकबरके राज्यारोहणके समयके लगभगका ही) निश्चित होता है एवं मेरे विद्वान मित्र मि० डा० दशरथ शर्माने ग्रन्थकी लेखन प्रशस्तिके निम्नोक्त श्लोक द्वारा पद्मसुन्दरसे अकबरका सम्बन्ध परम्परागत[1] सिद्ध किया है अर्थात् अकबरका जैनधर्म के प्रति आकर्षण उसकी बाल्यावस्था से ही सिद्ध होता है; क्योंकि पद्मसुन्दरके प्रगुरुकासम्बन्ध बाबर और हुमायुँके साथ पहले से चला आ रहा था। वह श्लोक इस प्रकार है:—

"मान्यो बाबर-भूभुजोऽत्रजयराट् तद्वत् हुमाऊं नृपोऽत्यर्थं प्रतीमनाः सुमान्यमकरोदानन्दरामाभिधं

तद्वत् साहि शिरोमणीकबरक्ष्मापालचूडामणे-र्मान्याः पंडितपद्मसुन्दर इहाभूत् पंडित व्रातजित्।२।

कवि पद्मसुन्दरका अकबरसे कितना परम्परागत एवं घनिष्ठ सम्बन्ध था कवि ऋषभदास हीरविजय सूरिरासमें आपके सम्बन्धमें अकबरके मुंहसे निम्नोक्त परिचय (हीरविजयसूरिजी) को दिलवाताहै—

कहि अकबर मा संयमी हेतो, पद्मसुन्दर तरुनाम।
चार ध्वजा धरतोपोसारमें, पंडित अति अभिराम।
ज्योतिष वैद्यक मां ते पूरो, सिद्धान्तीपरमाण।
अनेक ग्रन्थ तेणि पोते कीधा, जीती नहीं को जाण।
कालि ते पंडित पण गुदर्यो, अकबर कहि दुख थाइ।
क्याकरि न चले कछु हमका, एसो बात खुदाइ।

अर्थात् पद्मसुन्दरके स्वर्गवाससे अकबरको बड़ा दुःख हुआ था और पद्मसुन्दरजी ज्योतिष वैद्यक एवं सिद्धान्तके पूरे पण्डित थे उन्होंने अनेकों ग्रन्थ बनाये और ४ ध्वजायें उनके आश्रमपर विद्वत्ता सूचक फहराती थीं।

[1] आपके कथनानुसार तो अकबरके उदारता, दया, सर्वधर्म समभाव आदिकर गुणोंके विकाशमें इस जैन-विद्वान्का परम्परागत सम्बन्ध भी कारण हो सकता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आपकी विद्वत्ताका पता तो रायमल्लके लिये रचित उपर्युक्त ग्रन्थसे भी लगता है आपके कितने अच्छे एवं आशु कवि थे यह भी इनके रचनाकालके निर्देशसे ही सिद्ध होता है। सं० १६१४ के कातिक सुदी ५ को आपने 'भविष्दत्तकथा' की रचना की और सं० १६१५ के जेठ सुदी ५ को रायमल्लाभ्युदय ग्रन्थ बना डाला और कुछ महीनोंमें ही सं० १६१५ के मार्ग शीर्ष शुक्ला १४ को पार्श्वनाथकालन भी रचा गया अर्थात् १ वर्ष भी पूरा नहीं हो पाया कि आपने ३ ग्रन्थों की रचना कर डाली। आपके अन्य ग्रन्थों का उल्लेख मैं अपने पूर्व लेखमें कर चुका हूँ, उसके पश्चात् "राजप्रश्नीय नाट्य पदभंजिका" नामक एक और ग्रन्थ बीकानेर स्टेटकी अनूप-संस्कृत लायब्रेरीमें उपलब्ध हुआ है।

सम्राट अकबरसे इतना गहरा सम्बन्ध होने पर भी उसकी विद्वत् सभाके सभासदोंकी सूचीमें आपका नाम न होना अखर रहा है पर मेरे विद्वान मित्र, डा० दशरथशर्माने आइनेअकबरीमें दीगर सूचीको ध्यानसे पढ़कर इस शंकाका भी निवारण कर दिया है उनके कथनानुसार आइनेअकबरी आइन ३० में (Blockman P. 537-547) १४० विद्वान् सभासदोंकी सूची दीगई है उसमें ३३ हिन्दू थे। उनमें ५ विभाग थे जिनमेंसे प्रथम विभागमें "परमिन्दर" नाम आ जाता है यह उर्दू लिपिकी विचित्रताके कारण पद्मसुन्दरका बिगड़ा हुआ नाम ही प्रतीत होता है।

जैनइतिहासके लिये यह महत्वपूर्ण बात है कि सम्राट अकबरके पिता और प्रपिता हुमायु एवं बाबरसे भी पद्मसुन्दरजीके प्रगुरू आनंदराम सन्मानित थे एवं आइनेअकबरीमें पद्मसुन्दरजीका नाम प्रथमश्रेणीके विद्वानोंमें पाया जाता है।

पद्मसुन्दरजीका चौधरी रायमल्लजीसे जो धर्म प्रेम पाया जाता है वह भी हमारे लिये अनुकरणीय आदर्श है। दि० विद्वान्के साथ श्वेताम्बर श्रावककी एवं श्वेताम्बर विद्वान्के साथ दि० श्रावक की आदर भावनाका सुन्दर आदर्श हमें राजमल्लके छंदोविद्या पद्मसुन्दरजीके ग्रन्थ त्रय उपस्थित करते हैं। आज तो इस आदर्शको अपनानेकी बड़ी भारी आवश्यकता है।

अब पार्श्वनाथचरित्रकी रचना एवं लेखनकी प्रशस्ति दीजाती है। इसकी नकल पालणपुर भंडारसे करके भेजने की कृपा पूज्य बुद्धि मुनिजी महाराजने की है एतदर्थ मैं आपका आभारी हूँ।

पार्श्वनाथ चरित्र

आदि—विशुद्ध सिद्धांत मनंतदर्शनं,
स्फुरच्चिदानंद महोदयोदितम्।
विनिद्रचंद्रोज्ज्वलकेवलप्रभं,
प्रणौमि चंद्रप्रभतीर्थनायकम् ॥१॥

नमदमरकिरीटज्योतिरुद्योतितांहिः
स्फुरदवगममग्नानंतसंवित्तिलक्ष्मीः।
मन इव शुचिदेहं देहवन्सानसंस्ता-
त्सकलसुखविभूत्यै चारुचंद्रप्रभोऽयम् ॥२॥

उग्राग्रोतकवंशजः शुचिमतिस्तत्त्वार्थविद्यापटु-
र्यस्याभिज्ञमतल्लिकाभिरनिशं गोष्ठी स्फुटं रोचते
मान्यो राजसभासु सज्जनसभाशृंगारहारो भुवि,
श्री जैनेंद्रपदद्वयार्थनिरतः श्रीरायमल्लोऽभवत् ॥३॥

तेनाभ्यर्थनयाऽतिथि सविनयं तेजाः पुरः स्थः सतां,
मान्यः संसदि पद्मसुन्दरकविं षट्तर्कसक्रांतधीः
काव्यं श्रीश्रुतपंचमीफलकथा संदर्भगर्भं मम,
श्रुत्यर्थं क्रियतां सुकोमलमतस्तच्चं देमारभ्यते ॥४॥

अंत—आनंदोह्वय पर्वतैकतरणे रानंदमेरोगुरोः,
शिष्यः पंडित मौलिमणिः श्रीपद्ममेरुगुरुः। (?)
तच्छिष्योत्तमपद्मसुन्दर कविः श्रीपार्श्वनाथाह्वयं,
काव्यंनव्यमिदं चकार सरसालंकार संदर्भितम्॥
वंशेऽग्रोतकनाम्निगोइलमहागोत्रे पवित्रीकृती,
विख्यातो नरसिंहसाधुरभवत्सिंहो नराणामिव।
श्रद्धालुर्जिनपादपंकजरतो राज्ञां सदस्सुस्तुतो,
दाताज्ञातृशिरोमणिः सुकृतिनामग्रेसरः सम्मतः ॥४॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तदीयपुत्रौ नयशीलशालिनौ,
सुधार्मिकौ ख्यात गुणौ बभूवतः ।
जिनेंद्रगुर्वागमभक्तिबन्धुरौ,
क्रमेण नानु सहणू समाह्वयौ ॥६६॥

तयोस्तु नान्वाख्य इति स्फुटौजसा,
दिगंतविश्रान्तयशाः स्फुरद्गुणः ।
वदान्यमान्यो जिनपादपंकज--
द्वयार्चनैकप्रवणो बभूव सः ॥६७॥

तदंजोऽन्नून्नृपसंसदिस्तुतः,
शशांक कुन्दद्यु तिकीर्त्तिभासुरः ।
प्रसिद्धनामा जिनभक्तिनिर्भरो,
बभार पात्रेष्वतिदानशौंडताम् ॥६८॥

विशुद्धसिद्धान्तसुधारसायने,
सुनव्यकाव्ये रसिको महानभूत् ।
जिनेशगुर्वागमपूज्यपूजकः,
स रायमल्लो विनयेन ये पटुः ॥६९॥

अकारयद्यः सबलार्हतां स्फुरं-
चरिदृब्धं नवकाव्यमादितः ।
इदं च सालंकृतिसूक्तिसूचितं,
स पार्श्वनाथाह्वयकाव्यमादिराः ॥७०॥

यदर्जितं वित्तमिहासपात्रसा--
द्यदीयचित्तं किल धर्मतत्त्वसात् ।
वचो यदीयं स्फुटमास सत्यसत्,
स रायमल्लो भुविनन्दताच्चिरम् ॥७१॥

सहोदरस्तस्य वांमूवभावर्कस्ततः
कनीयान् विनयेन बन्धुरः ।
अनन्यसमान्यगुणः स्फुरत्तरः
प्रकृष्टसौहार्दनिधिः सतां मतः ॥७२॥

तथाह्वमीचन्द्रसुतेन साधुना
स रायमल्लो जयतात्परिस्कृतः ।
तुजोद्याख्येन च सालिवाहना-
ङ्गजेन सानन्तसुतेन सन्ततम् ॥७३॥

अब्दे विक्रमराज्यतः शर[५]
कला[१] भूत्तर्क[६] भू[१] संमिते,
मार्गे मास्यसिते चतुर्दशदिने
सत्सौम्य वाराङ्किते ।
काव्यं कारितवानतीव सरसं
श्री पार्श्वनाथाह्वयम्,
सोऽयं नन्दतु नन्दनैः परिवृतः
श्रीरायमल्लः सदा ॥७४॥

इति श्रीमत्परमेष्ठिपदारविन्द
मकरन्दसुन्दररसास्वाद-
सन्तर्पित भव्यभव्ये पं० श्रीपद्ममेरु
विनेय पं० श्रीपद्म-
सुन्दर विरचिते साधुनान्वात्मज
साधु श्रीरायमल्ल समभ्यर्थिते
श्रीपार्श्वनाथ महाकाव्ये श्रीपार्श्व
निर्वाणमङ्गलं नाम सप्तमस्सर्गः ॥७५॥

नियद्धूणयः सकलकर्मकलङ्कपङ्क
मानन्दसुन्दरमुदारमनन्तसौख्यम् ।
निर्वाणमाप भगवान् सच पार्श्वनाथः
श्रीरायमल्लभविकस्य शिवाय भूयात् ॥७६॥ आर्शीवादः ॥

लेखक प्रशस्ति

संवत् १६१७ वर्षे चैत बदी १० मी अकबरराज्ये प्रवर्त्तमाने श्रीकाष्ठासङ्घे माथुरान्वये पुष्करगणे उभय-भाषाप्रवीणतपनिधिः भट्टारक श्रीउद्धरसेनदेवाः, तत्पट्टे सिद्धान्तजलसमुद्रविवेककलाकमलिनीवि-कासनैकदिनमणिः भट्टारक श्रीदेवसेनदेवाः, कवि-विद्याप्रधान भट्टारक श्रीविमलसेनदेवाः, तत्पट्टे भट्टारक श्रीधर्मसेनदेवाः, तत्पट्टे भट्टारक श्रीभावसेनदेवाः,तत्पट्टे भट्टारक श्रीसहस्त्रकीर्त्तिदेवाः, तत्पट्टे भट्टारक श्री-गुणकीर्त्तिदेवाः, तत्पट्टे भट्टारक श्रीयशःकीर्त्तिदेवाः, तत्पट्टे दयाद्रिचूडामणि भट्टारक श्रीमलयकीर्त्तिदेवाः, तत्पट्टे वादीभकुंभस्थलविदारनैक केसरी भव्याम्बुज विकासनैकमार्तण्डद्रु गमपञ्चमहाव्रतधारणैकप्रचण्डः चारु चारित्रोद्वहन धुराधीरः• तपसा निर्जितैकवीरः भट्टारकः श्रीगुणभद्रसूरिदेवाः, तत्पट्टे भट्टारक श्री-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भानुकीर्त्तिदेवाः, तत् शिष्य मण्डलाचार्य श्रीकुमारसेनदेवाः, तदाम्नामे अग्रोतकान्वये गोइलगोत्रे स्वदेश-परदेश विख्यातमानु चौधरीछाजू तयोः पुत्र (ाः) पंच मेरुवत्पंच ५, प्रथम पुत्र अनेकदानदाइकु चौधरीहाल्हा १, द्वितीयपुत्र चौधरी बूढ़णु २, तृतीयपुत्र चौधरी नरपाल ३, चतुर्थपुत्र चौधरी नरसिंघ, पंचम-पुत्र चौधरी भोजा ५ चौधरी नरसिंह भार्या शीलतोय-तरंगिणी साध्वी मदनाही, तयोः पुत्रत्रयं, तत्र प्रथम पुत्र चौधरी नानू भार्या साध्वी ओढ़रही, तयो पुत्रद्वौ, प्रथम पुत्र चौधरी अनेक दान दाइकु चौधरी रायमल्ल तस्य भार्या साध्वीद्वौ, प्रथमभार्या साध्वी ऊधाही, दुतीय भार्या साध्वी मीनाही, तयोः पुत्र पंच, प्रथम पुत्र चिरंजीवी अमीचंदु, तस्य भार्या साध्वी जेठमलही, चौधरी रायमल दुतीय पुत्र चिरंजीवी उदैसिन्धु, तृतीय पुत्र चिरंजीवी सालिवाहणु, चतुर्थ पुत्र चिरंजीवी धर्मदास, पंचम पुत्रचिरंजीवी अनन्तदास। चौधरी नानू दुतीय पुत्र चौधरीभवानीदास, तस्य भार्या साध्वी माणिकही। चौधरीनरसिंघ दुतीय पुत्र चौधरी कुलिचंदु। चौधरी नरसिंघ तृतीयःपुत्र चौधरी सहणपालु, तस्य भार्याद्वौ, प्रथम भार्या साध्वी गाल्हाही, दुतीय भार्या साध्वीसमाही, पुत्र त्रयं, प्रथम पुत्र चि. सुषमलु, तस्य भार्या साध्वी पोल्हणही, दुतीय पुत्र चि० पहाड़मलु, तृतीय पुत्र चि० जसमलु। एतेषां मध्ये साधु नानूसुत चौधरी रायमलु, तेन इदं पार्श्वनाथमहाकाव्यं कारितमिति संकोडीकरचरणं, उग्गगीवा अहोमुहादिट्ठी। जं सुहप्पवेलेहो, तं सुहपावेउय तुम्ह दुज्जणऊ?॥१॥

समाप्तमिति। शुभंभवतु।

किसके विषयमें मैं क्या जानता हूँ ?

[ले०श्री ला० जुगलकिशोरजी कागजी]

१. मैं पंचपरमेष्ठीके विषयमें क्या जानता हूँ ?

श्रीअरहंत सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय तथा सर्व-साधु ये पंच परमेष्ठी हैं। ये पांचों ही परम इष्ट हैं। ये अज्ञानरूपी परिणतिको रोककर कर्मबंधनसे मुक्त होगए हैं तथा हो रहे हैं। पूर्णसुखी होगए हैं तथा पूर्णसुखी होनेके सन्मुख हैं। ये पांचों ही प्रत्येक प्राणीको सुख प्राप्त करनेके लिये एक आदर्श-मार्ग दर्शानेवाले हैं। इनकी यथार्थ प्रवृत्ति होनेके कारण स्मरण, वन्दन, पूजन और दर्शन सभी प्राणियोंके लिये यथार्थ प्रवृत्तिकी ओर ही आचरण कराता है। यथार्थ प्रवृत्तिही सत्य है, सुख है। अतएव ये संसारके बंधनों व दुःखोंसे भयभीत होकर यथार्थकी प्रवृत्तिमें स्वयं लगे हैं और अन्यको भी अपनी शान्तमुद्राद्वारा उसी मार्गका साक्षात् संकेत कर रहे हैं। इसी कारण दुःखोंसे बचनेका एक मात्र उपाय पंचपरमेष्ठीका ही अनुकरण है। उन्हींका दर्शन व ध्यान सुलभ है, साध्य है, इष्ट है, कर्मबन्धनसे रोकनेवाला है। अरहंत व सिद्ध भगवान पूर्ण रीतिसे अपने विषयमें सब कुछ जानते हैं और परके विषयमें भी सब कुछ जानते हैं। इसी कारण पूर्ण सुखी हैं। उनके सुखका कभी विनाश नहीं होगा।

२. मैं अपने विषयमें क्या जानता हूँ ?

मैं हूँ। मैं जीवित हूँ। मैं जीवित ही रहूँगा। मेरा सम्बन्ध इस शरीरसे कुछ समय पर्यन्त ही

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रहेगा। जबसे मैंने इस वतमान सम्बन्धी शरीरसे संयोग किया है। बाल-कालको छोड़कर बाकी समयके भीतर जो कुछ मैंने कर्म किये हैं वह सब मैं जानता हूँ। जो दुःख मैंने भोगे हैं उन्हें भी जानता हूँ। जिन्होंने मेरे साथ भलाई की है उस भलाईको भी जानता हूँ। जिन्होंने मेरे साथ बुराई की है उसको भी मैं जानता हूँ। जिसके साथ मैंने बुराई की है उस बुराईको भी मैं जानता हूँ। जिसके साथ मैंने भलाई की है उसको भी मैं जानता हूँ। अपने योग्य विषयके भीतर अपनेको मैं भली-भाँति जानता हूँ। अपने विषयके ग्रहण करनेमें मैं अपनेको पूर्ण सम्पन्न देखता हूँ। मैं ज्ञानी हूँ, ज्ञानवान् हूँ, अपना तथा अपने ज्ञानका विनाश कभी नहीं चाहता। सदा सुख ही चाहता हूँ। पापोंके फलको भोगनेसे डरता हूँ, पुण्यके फलको भोगनेसे नहीं डरता। इससे प्रतीत होता है कि मेरा स्वभाव सुख ही है। मैं जानता हूँ कि वास्तवमें मेरा स्वभाव सुख ही है। वह सुख मेरे ही अन्दर है, मेरी ही सम्पत्ति है। मैं ही उसका स्वामी हूँ, मैं ही उसकी खोज कर सकता हूँ, मैं ही उसका कर्ता हूँ और मैं ही उसका भोगता हूँ। जिस समय मुझे दुःख भोगने पड़ते हैं उस समय मैं उलझनमें पड़जाता हूँ। यदि वह दुःख किसी चैतन्यके निमित्तसे प्रतिभासित होजाता है तब तो क्रोध उपस्थित होकर उससे वैर व बदला लेनेका निश्चय-सा कर लेता हूँ। और यदि वह दुःख स्वयं शारीरिक विकारके अथवा द्रव्य, क्षेत्र, काल भावके निमित्तसे होता हुआ जान पड़ता है तब अपने कर्मोंके दोषोंको ही कारण जानकर क्षमा-प्रार्थी होजाता हूँ। एक दशामें तो क्रोध और दूसरीमें क्षमा कितना भारी अन्तर है। दुःख एक है, कार्य-कारणके वशसे दशा दो हो जाती हैं। यह मैं भली-भाँति जानता हूँ। अपने विषयमें अपनी क्रूरताको या अपने सौन्दर्यको जितना मैं जानता हूँ अन्य नहीं जानता। इसीलिये मैं अपने विषयमें ज्ञानी हूँ, परन्तु अन्यके विषयमें अज्ञानी।

३. मैं अपने और पंच परमेष्ठीसे भिन्न अन्य पदार्थोंके विषयमें क्या जानता हूं ?

अपने विषयमें जितना मुझे निश्चय है उतना ही अन्यके विषयमें अनिश्चय है, धोखा है। जितनी सुध-बुध अपने विषयमें करनेमें मैं स्वतंत्र हूँ उतना ही अन्यकी सुध-बुध रखनेमें परतंत्र हूं। मेरी जितनी भी प्रवृत्तियाँ अन्यमें और अन्य विषयोंकी जानकारीमें बढ़ती जारही हैं उतना ही भय, चिन्ता, उसकी रक्षाका भार और स्वार्थ अधिकाधिक होता जारहा है। जितना-जितना अन्यको मैं अपनाता जारहा हूँ उतना-उतना घमंड बढ़ता जाता है। स्वाभिमानको अभिमानके भारसे दबाता जाता हूँ। यहाँ तक कि अभिमानको ही स्वाभिमान समझ बैठा हूँ। ऐसा प्रतीत होता है कि बिना अभिमानकी सामग्रीके मेरे जीवनका कुछ भी मूल्य नहीं है। और उसके मदमें उन्मत्त होकर महान्से महान् पापोंमें भी फंस कर महान् शारीरिक व मानसिक दुःखोंको निरन्तर भोगकर भी दुःखोंको भूल रहा हूँ। दुःखोंकी प्राप्तिके साधनोंमें ऐसा मग्न होकर मिथ्या आनन्दकी लहरोंमें बहा चला जारहा हूँ। अपनी बेहाल अवस्थाको ही अपना हाल, अपना गुण, अपना कर्तव्य निश्चत किये जाता हूँ। अपनेको पराया और परायेको अपना दोनोंका मेल ही दुःखोंसे रक्षाका उपाय मानकर संलग्न होरहा हूँ। इस प्रकार सुखोंके साधन मिलाते-मिलाते भी न मालूम यह दुःखोंके व क्रोधके बादल क्यों छाये रहते हैं। यहाँ ज्ञान असमर्थ हो कर इस प्रकार दुःखोंके विषयमें जानकारी करनेमें व उन दुःखोंसे बचनेके उपायोंको जाननेमें असमर्थ होरहा हूँ, अज्ञानी होरहा हूँ। अंशमात्र भी नहीं जान रहा हूँ, जिन विषयोंमें आनन्द मनाता हूँ वही विषयभोगके बाद दुःख क्यों बन जाते हैं ? जिस

Jain Education International		For Personal & Private Use Only		www.jainelibrary.org

विषयके भोगके लिये मैं व्याकुल होरहा था मेरी लालसा निरन्तर मुझे बेचैन कर रही थी उस विषयको भोगनेके बाद भी मुझे तृप्त क्यों नहीं होती? मेरी लालसा अधिकाधिक क्यों बढ़ती रहती है? इच्छानुकूल भोग न मिले तो भी मैं दुःखी और भोगनेके पश्चात् भी पुनः भोगकी इच्छासे दुःखी? केवल भोगते समय सुखी। अतः ज्ञात होता है कि मैं बहुत थोड़ा काल तो सुखी और अधिक काल दुःखी रहता हूँ। क्या यही सुख है? क्या मेरे ज्ञानका इतना ही कर्तव्य है? इच्छानुकूल भोग प्राप्त हों या न हों इतना भी मेरे ज्ञानको इस समय निश्चय नहीं है। सुखके निमित्त स्त्री-पुत्र-पैसा आदिक मिलकर कब बिगड़ जायें इतना भी पता नहीं। यह प्यारा शरीर जिसकी रक्षाके सैकड़ों उपाय करते हुए भी यह कब अपना नाता तोड़कर घोर-से-घोर संसाररूपी भंवरमें धक्का देकर बिछुड़ जाय, यह भी मेरा ज्ञान नहीं जानता फिर ज्ञान अन्यके विषयमें जानता ही क्या है और जाननेकी चेष्टा ही क्यों करता है? आज तक जाना ही क्या है और क्या जाननेकी इच्छा है और इससे क्या लाभ है यह सब प्रत्येक मनुष्य स्वयं विचार कर सकता है। स्वयं ज्ञानी होकर फिर क्यों अज्ञान दशामें पड़कर वृथा ही काल गँवा रहा है। जिस विषयपर अपना अधिकार नहीं उस विषयमें प्रवृत्ति करना क्या भूल नहीं, भूल क्या पाप नहीं, पाप क्या दुःख नहीं, दुःख क्या असमर्थता नहीं, असमर्थता क्या चिन्ता नहीं, चिन्ता क्या भय नहीं। तात्पर्य यह कि पदार्थके यथार्थ स्वरूपका भली-भांति मनन करके उसके सत्य-स्वरूपकी पहिचान ही वास्तविक ज्ञान है। वस्तुओंके विषयमें स्वयं फँस जाना ज्ञान नहीं, अज्ञान है, दुःख है। अतः अपनेसे भिन्न या अपने सदृशसे भिन्न वस्तुओंमें अपनेको अज्ञानी समझकर उनसे दूर रहना अथवा मौन (निर्विकल्प) रहना ही मानों संसारके भयंकर अन्धकार व दुःखोंसे स्वयंकी रक्षा करना है। ज्ञानी व अज्ञानीका भेद भेद ही सुख व दुःख बन रहा है, अन्य और कुछ नहीं।

कल्पसूत्रकी एक प्राचीन लेखक-प्रशस्ति

[निम्नलिखित प्रशस्ति एक स्वर्णाक्षरी कल्पसूत्र पुस्तकके अन्तमें लिखी गयी थी। यह ग्रन्थ संवत् १५१६ अथवा १४५६ ई० में लिखा गया था। इस समय कल्पसूत्र की यह पूर्ण पुस्तक अप्राप्त है। केवल दोनों ओर लिखे हुए तीन पन्ने बचे हैं, जिनपर ५ से ३१ तकके श्लोक लिखे हैं। इसीके साथ वैसे ही सुनहरे अक्षरोंमें लिखी हुई कालकाचार्य-कथानककी प्रति भी थी। इसके अन्तमें "इति श्रीकालकाचार्यकथा" लिखा हुआ है। यह प्रति भी कल्पसूत्रके समकालीन थी। ऐतिहासिक दृष्टिसे महत्वपूर्ण होनेके कारण मूल प्रशस्ति प्रकाशित की जाती है। —वासुदेवशरण अग्रवाल]

हो गुच्छ इवाधिशीलः ॥४॥
ततोऽपि जातो वरदेवनाम्ना
पवित्रचारित्रसुदीप्तधाम्ना
जगज्जनीनो जिनदेवनामा
बभूव तस्यानुगतिं दधानः ॥५॥

तत्पुत्रनायंद इति प्रसिद्ध-
स्तदङ्गजो आजड इत्युदीर्णः
सुलक्षणो लक्षणयुक् क्रमेण,
गुणालयौ गोसलदेसलौ च ॥६॥
श्रीदेसलाद् देसल एव वंशः

ख्यातिं प्रपन्नो जगतीतलेऽस्मिन्
शत्रुञ्जये तीर्थवरे विभाति
यन्नामतस्त्वादिकृतो विहारः ॥७॥
तत्सूनवः साधुगुणैरुपेता-
स्त्रयोऽपि सद्धर्मपरा बभूवुः
तेश्वादिमः श्रीसहजो विवेकी
कर्पूरधारा विरुदप्रसिद्धः ॥८॥
तदंगभूर्भावविभूषितान्तः
सारङ्गसाधुः प्रथितप्रतापः
आजन्म यस्याऽभवदात्तशोभः
सुवर्णधारा विरुदप्रवाहः ॥९॥
श्रीसाहणः साहिनृपाधिपानां
सदाऽपि सन्मानपदं बभूव
देवालयं देवगिरौ जिनाना-
मकारयद् यो गिरिशृङ्गतुङ्गम् ॥१०॥
बन्धुस्तृतीयो जगतीजनेन
सुगीतकीर्त्तिः समरः सुचेताः
शत्रुञ्जयोद्धारविधिं विधाय
जगाम कीर्त्तिं भरताधिकां यः ॥११॥
यः पाण्डुदेशाधिपमोचनेन
गतः परां ख्यातिमतीव शुद्धाम्
महम्मदे योगिनिपीठनाथे
तत्प्रौढतायाः किमु वर्णनं स्यात् ॥१२॥
सुरत्नकुक्षिः समरश्रियः सा
यदुद्भवाः षड्तनुजा जगत्याम्
साल्हाभिधः श्रीसहितो हितज्ञै-
स्तेष्वादिमोऽपि प्रथितोऽद्वितीयः ॥१३॥
देवालयैर्देवगुरुप्रयोगाद्
द्विबाणसंख्यैर्महिमानमाप
सत्याभिधः सिद्धगिरौ सुयात्रां
विधाय सङ्घाधिपतेर्द्वितीयः ॥१४॥
यो योगिनीपीठनृपस्य मान्यः
स डुंगरस्त्यागधनस्तृतीयः
जीर्णोद्धृतेर्धर्मकरश्चतुर्थः
श्रीसाल्गिः शूरशिरोमणिश्च ॥१५॥

श्रीस्वर्णपालः सुयशो विशाल-
श्चतुष्कयुग्म[४४]प्रमितैरमोघैः
सुरालयैः सोऽपि जगाम तीर्थं
शत्रुञ्जयं यात्रिकलोकयुक्तः ॥१६॥
स सज्जनः सज्जनसिंहसाधुः
शत्रुञ्जये तीर्थपदं चकार
यो द्वयब्धि[४२]संख्ये समये जगत्या
जीवस्य हेतुः समभूद् जनानाम् ॥१७॥
स्वमातृकुक्षिप्रभवा मनोज्ञाः
सौवर्णपालाः सरिदीश[४]संख्याः
सोलाभिधः प्राथमिकः सुवत्सयो-
रन्तरालेन दयेन युक्तः ॥१८॥
श्रीसोढलेन्द्रः शुभसामराज
एवं महाभूपतिराजमान्यः
द्वितीयबन्धोर्विमलाभिधाना
बभूव पत्नी कुलशीलरम्या ॥१९॥
तत्कुक्षिजाः श्रीशिवदत्त आद्यः
शिवशङ्करश्चापि शुभङ्करोऽपि
क्षेत्रे द्वितीये सहजाभिधः श्री-
चन्द्रेण युक्तो गुणभृद्गुणज्ञः ॥२०॥
दुर्भिक्षकालेऽन्नसुभक्षकस्य
पतिव्रता साधुशिवङ्करस्य
सत्पुत्रपौत्रै जयति कृतिज्ञा
सद्वल्लभा देवलदेविनाम्नी ॥२१॥
तदङ्गजाः षड्विधधर्मकृत्य
परायणाः षट्प्रमिता जयन्ति
सुधीवरः श्रीसहितः मुदर्थः
श्रीराजनामाभिहितो द्वितीयाः ॥२२॥
श्रीसांगणः साहिसभासुदक्षो
हाजाभिधानो हरवासहासः
सोमाल्यया सौमगुणो गुणाढ्यो
जीयात् सदा जावरनामधेयः ॥२३॥
श्रीसत्यकाहासवरः सभाग्यः
संडाभिधः श्रीसुयशो गुणाब्धिः
श्रीवंतसंग्रामशिवादयोऽपि

तस्याः सुपुत्राः दीप्तिभासः ॥२४॥
श्रीपार्श्वनाथस्य गणे प्रतीते
पुरा प्रवीणः सुभदत्तनामा
यदाख्यया केशिगणः प्रसिद्धः
केशी ततोऽपि प्रगुणो बभूव ॥२५॥
जीवादितत्वप्रगुणैर्गुणात्मा
सदाशुभः स्वप्रभुसूरिराजा
रत्नाकरां ख्यातिमवाप गच्छ-
स्ततश्च रत्नप्रभसूरिरेषः॥२६॥ युग्मम्
ऊकेशतो यत्प्रतिबोधदानाद्
ऊकेशगच्छः प्रथतां जगाम
यत्तस्य बोधे प्रतिबोधशक्त्या
श्री यक्षदेवः सुगुरुस्ततोऽनु॥२७॥
श्रीकक्कुदाचार्यगणप्रतीतौ
श्रीदेवगुप्तो भवनीरनौका।
सद्भाग्यसौभाग्यतरैककोशः
श्रीसिद्धसूरिस्तदवाप्तपट्टः ॥२८॥

तत्पट्टनाथः प्रभुकक्कसूरिः
सिद्धान्तरत्नाकररत्नभूरिः
सद्देशनादेशविशेषदानाद्
हि जेजयीते वसुधातलेऽस्मिन् ॥२९॥
तस्योपदेशाद् सुविधाप्य हैमं
सैद्धान्तिकं ? पुस्तकमेतदेवं
श्रीवाचनाचार्यवराय वित्त-
सराय सादाद् निजहर्षयोगात् ॥३०॥
यावत् स्थिरो मेरुमहीधरोऽयं
तथा ध्रुवाब्धिः खलु चन्द्रसूरौ
तावद् दृढं नन्दतु वाच्यमानं
हर्षेण हृद्यं प्रतिवर्षमेतत् ॥३१॥
इति सौवर्णकल्पपुस्तकप्रशस्तिसमासमिति ॥छ॥
सं० १५१६ वर्षे चैत्रसुदि ८ अष्टम्यां रवौ
श्रीपत्तनवास्तव्यं मं० वाछाकेन लिखितं ॥छ॥
भद्रं भूयात्। श्रीसंघस्य ॥छ॥

अहार क्षेत्रके प्राचीन मूर्तिलेख

[संग्राहक—पं० गोविन्ददास जैन, न्यायतीर्थ शास्त्री]

(वर्ष ६ किरण १० से आगे)

—)❀(—

(नं० ३०)

मूर्तिका शिर और दोनों हाथ नहीं हैं। आसनसे पता चलता है कि मूर्ति कुछ बड़ी थी। चिन्ह शेरका है। करीब २ फुट ऊँची होगी। पद्मासन है। पाषाण काला है।

लेख—सम्वत् १२०६ वैशाख सुदी १३ माधुवान्वये साहुयशवंत तस्य सुत साहुयसहद तस्य भार्या माहिणि तयोः पुत्र श्यामदेव एते प्रणमन्ति नित्यम्।

भावार्थः—माधुव वंशोत्पन्न शाह यशवन्त उनके पुत्र साहु यशहद उनकी धर्मपत्नी माहिणि उन दोनोंके पुत्र श्यामदेवने इस प्रतिबिम्बकी सम्वत् १२०६ के वैशाख सुदी १३ को प्रतिष्ठा कराई। ये सब उसे सदा प्रणाम करते हैं।

(नं० ३१)

मूर्तिका सिर्फ आसन उपलब्ध है। बाकी आङ्गोपाङ्ग नहीं हैं। चिह्न शेरका है। करीब १। फीट पद्मासन है। पाषाण काला है। पालिश चमकदार है।

लेख—सम्वत् १२१० वैशाख सुदी १३ पण्डितश्री-विशालकीर्त्ति आर्यिकात्रिभुवनश्री तयोः शिष्यणी पूर्णश्री तथा धनश्री एताः प्रणमन्ति नित्यम्।

भावार्थः—सम्वत् १२१० के वैशाख सुदी १३ को

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पण्डित श्रीविशालकीर्त्ति और आयिका त्रिभुवनश्री तथा उनकी शिष्यणी पूर्णश्री एवं धनश्री ये सब सदा प्रणाम करते हैं।

(नं० ३२)

मूर्त्तिके आसनके अतिरिक्त बाकी हिस्सा नहीं है। चिह्न बैलका है। करीब १॥ फुट ऊँची पद्मासन है। पाषाण काला है। पालिश चमकदार है।

लेख—सम्वत् १२०२ चैत्रसुदी १३ गोलापूर्वान्वये नायक श्रीरतन तस्य सुत आल्ह-पोल्ह-सामदेव-भामदेव प्रणमन्ति नित्यम्।

भावार्थः—गोलापूर्ववंशोत्पन्न नायक श्रीरतन उनके पुत्र आल्ह-पाल्ह-सामदेव-भामदेव सम्वत १२०२ के चैत्र सुदी १३ को बिम्बप्रतिष्ठा कराके प्रतिदिन नमस्कार करते हैं।

(नं० ३३)

मूर्त्तिका सिर्फ शिर नहीं है। बाकी सर्व आङ्गोपाङ्ग उपलब्ध हैं। चिह्न वगैरह कुछ नहीं है। करीब १॥। फुट ऊँची पद्मासन है। पाषाण काला है। पालिश चमकदार है।

लेख—संवत् १२१० वैशाख सुदी १३ मेड़तवाल-वंशे साहु प्रयणराम तत्सुत हरसू एतौ नित्यं प्रणमन्तः।

भावार्थः—सं० १२१० वैसाख सुदी १३ को मेड़तवालवंशमें पैदा हुए साहु प्रयणराम उनके पुत्र हरसू ये दोनों बिम्बप्रतिष्ठा कराके प्रणाम करते हैं।

(नं० ३४)

मूर्त्तिके दोनों तरफ इन्द्र खड़े हैं। घुटनों तक पैरोंके अतिरिक्त बाकी हिस्सा नहीं है। चिह्न दो हिरणोंका है। करीब ३ फुट ऊँचाई है। मूर्त्ति खड्गासन है। पाषाण काला है। पालिश चमकदार है।

लेख—सम्वत् १२०६ गोलापूर्वान्वये साहु महिदीन तस्य पुत्र स्युपस्यु तथा अर्हमामक प्रणमन्तः।

भावार्थः—गोलापूर्ववंशोत्पन्न साहु महिदीन उनके पुत्र स्युपस्यु तथा अर्हमामक, संवत् १२०६ में प्रतिष्ठा कराके प्रणाम करते हैं।

(नं० ३५)

मूर्त्तिका शिर नहीं है। बाकी सर्वाङ्ग सुन्दर हैं। चिन्ह शेरका है। करीब १॥। फुट ऊँची है। पद्मासन है। पाषाण काला है। पालिश चमकदार है।

लेख—संवत् १२१६ माहसुदी १३ श्रीमत्कुटकान्वये पण्डितलक्ष्मणदेवस्तस्य शिष्यार्यदेव आर्यिका लक्ष्मश्री तवेल्लिका चारित्रश्री तद्भ्राता लिम्बदेव एते श्रीमद्वर्द्धमानस्य बिम्बं अहिनिशि प्रणमन्ति।

भावार्थ—सं० १२१६ माघ सुदी १३ के शुभ दिनमें कुटकवंशमें पैदा होनेवाले पण्डित लक्ष्मणदेव उनके शिष्य आर्यदेव तथा आर्यिका लक्ष्मश्री उनकी सहचरी चारित्रश्री उनके भाई लिम्बदेव श्रीवर्द्धमान भगवानकी प्रतिमाको प्रतिष्ठापित कराके प्रतिदिन नमस्कार करते हैं।

(नं० ३६)

मूर्त्तिका आसन तथा कुहिनियों तक हाथ अवशिष्ट है। बाकी हिस्सा नहीं है। चिन्ह सिंहका प्रतीत होता है। करीब २ फुट ऊंची पद्मासन है। पाषाण काला है। पालिश चमकदार है।

लेख—सम्वत् १२२५ जेठ सुदी १५ गुरुदिने पंडित-श्रीजसकीर्त्तिशीलदिवाकरनीपद्मश्रीरतनश्री प्रणमन्तिनित्यम्।

भावार्थः—सम्वत् १२२५ जेठ सुदी १५ गुरुवारको पण्डित श्रीयशकीर्त्ति तथा शीलदिवाकरनी पद्मश्री और रतनश्रीने बिम्ब-प्रतिष्ठा कराई।

(नं० ३७)

आसन और आधे हाथोंके अतिरिक्त मूर्त्तिका बाकी हिस्सा खण्डित है। आसन चौड़ा और मनोहर है। चिह्न बैलका है। करीब दो फुटकी ऊँची पद्मासन है। पाषाण काला है। आसन टूट गया है और इसलिये लेख अधूरा है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लेख—सम्वत् १२१० वैशाखसुदी १३ गृहपत्यन्वये साहुसुलधस्य सुत..............।

भावार्थः—सम्वत् १२१० के वैशाखसुदी १३ को गृहपति वंशोत्पन्न साहु सुलधर उनके पुत्र..........ने प्रतिष्ठा कराई।

(नं० ३८)

दोनों तरफ दो इन्द्र खड़े हैं। आसन और कुछ पैरोंके अतिरिक्त बाकी हिस्सा नहीं है। चिह्नको देखकर अरहनाथकी प्रतिमा मालूम होती है। करीब ३ फुट ऊँची खड्गासन है। पाषाण काला है। इस मूर्त्तिका धड़ मन्दिर नं० १ की दीवारमें खचित है, ऐसा नापसे मालूम होता है।

लेख—सम्वत् १२०६ गोलापूर्वान्वये साहु सुपट भार्या अल्ह तस्य पुत्र सान्ति पुत्र देल्हल अरहनाथं प्रणमन्ति नित्यम्।

भावार्थः—गोलापूर्ववंशोत्पन्न साहु सुपट उनकी पत्नी अल्ह उसके पुत्र शान्ति तथा पुत्र देल्हलने इस बिम्बकी सम्वत् १२०६ में प्रतिष्ठा कराई।

(नं० ३९)

मूर्त्तिका शिर और हथेलियोंके अतिरिक्त बाकी हिस्सा उपलब्ध है। चिह्न बैलका है। करीब दो फुट ऊँची पद्मासन है। पाषाण काला तथा चमकदार है।

लेख—सम्वत् १२०३ माघ सुदी १३ वैश्यान्वे साहु सुपट भार्या गंगा तस्य सुतः साहु रासल पाल्हऋषि प्रणमन्ति नित्यम्।

भावार्थः—वैश्य कुलमें पैदा होनेवाले सुपट उनकी धर्मपत्नी गंगा उनके पुत्र साहु रासल तथा पाल्ह ऋषिने सं० १२०३ माघसुदी १३ गुरुवारमें प्रतिष्ठा कराई।

(नं० ४०)

मूर्तिका शिर और आधे हाथोंके अतिरिक्त सब अङ्ग प्राप्य हैं। चिन्ह बैलका है। करीब २ फुट ऊंची पद्मासन है। पाषाण काला है। पालिश चमकदार है।

लेख—सम्वत् १२३७ मार्ग सुदी ३ शुक्रे गोलापूर्वान्वये साहु वाल्ह भार्या मदना वेटी रतना श्रीऋषभनाथं प्रणमन्ति नित्यम्।

भावार्थः—सम्वत् १२३७ के अगहन सुदी ३ शुक्रवारको गोलापूर्व वंशमें पैदा होनेवाले साहु वाल्ह उनकी पत्नी मदना और उनकी पुत्री रतनाने श्री ऋषभनाथके प्रतिबिम्बकी प्रतिष्ठा कराई। ये सब नित्य प्रणाम करते हैं।

(नं० ४१)

मूर्तिके आसनके अतिरिक्त बाकी आंगोपांग नहीं हैं। आसन चौड़ा है। चिन्ह बैलका है। करीब २॥ फुट ऊंची पद्मासन है। पाषाण काला तथा चमकदार है।

लेख—गोलापूर्वान्वये साहुरासल तस्य सुत साहु मामे प्रणमन्ति। गृहपत्यन्वये साहुकेशव भार्या शान्तिणी साहु बावण सुत माल्ह प्रणमन्ति।

सम्वत् १२०३ गोलापूर्वान्वये साहुयाल्ह तस्य भार्या पल्हा तयोः पुत्र बछराऊदेव-राजजस-बेवल प्रणमन्ति नित्यम् अषाड़ सुदी २ सोमे।

भावार्थः—गोलापूर्व वंशमें पैदा होनेवाले साहु रासल उनके पुत्र साहु मामे दोनों प्रणाम करते हैं। तथा गृहपति वंशमें पैदा होनेवाले साहु केशव उनकी धर्मपत्नी शान्तिणी और साहु बावण उनके पुत्र माल्हने बिम्बप्रतिष्ठा कराई। ये सब प्रणाम करते हैं।

तथा सम्वत् १२०३ के अषाढ़ सुदी २ सोमवारको गोलापूर्व वंशमें पैदा होनेवाले साहु याल्ह उनकी धर्मपत्नी पल्हा उन दोनोंके पुत्र बछरायदेव-राजजस-बेवल प्रतिष्ठा कराके प्रतिदिन नमस्कार करते हैं।

नोटः—इस मूर्तिके प्रतिष्ठायक गोलापूर्व और गृहपति इन दो जातियोंमें पैदा होनेवाले तीन कुटुम्बके सदस्य हैं जिन्होंने अपनी गाढ़ी कमाईका द्रव्य लगाकर यह बिम्ब निर्माण कराया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(नं ४२)

मूर्त्तिका शिर तथा दायाँ हाथ नहीं है। बाकी हिस्सा उपलब्ध है। लेखका प्रारम्भिक कुछ हिस्सा टूट गया है। २१० बचा है। अतः नीचे लेखमें सं० १२१० अनुमानसे लिखा गया है। चिन्ह बैलका है। करीब १।। फुट ऊंची पद्मासन है। पाषाण काला है। पालिश चमकदार है।

लेख—सम्वत् २१० (१२१०) पौरपाटान्वये साहुश्री गपधर भार्या गांग सुत सोढ्ढ-माहव एते सर्वे श्रेयसे प्रणमन्ति नित्यम्। वैशाख सुदी १३ बुधदिने।

भावार्थः—सम्वत् १२१० (?) के वैशाख सुदी १३ बुधवारको पौरपाटवंशमें पैदा होनेवाले साहु श्री गपधर उनकी भार्या गांग उनके पुत्र सोढ्ढ-माहव इन्होंने मोक्ष प्राप्त करनेके लिये बिम्बप्रतिष्ठा कराई।

(नं० ४३)

मूर्तिके आसन और हाथके अतिरिक्त बाकी हिस्सा नहीं है। चिन्ह हाथीका है। करीब २।। फुट ऊंची पद्मासन है। पाषाण काला तथा चमकदार है।

लेख—सम्वत् १२१० वैशाख सुदी १३ जैसवालान्वये साहु देल्हण भार्या पाल्ही तत्सुत पंडित राल्ह भार्या कोहणी तत्सुत वर्द्धमान-आमदेव एते श्रेयसे प्रणमन्ति नित्यम्।

भावार्थः—जैसवाल वंशमें पैदा होनेवाले साहु देल्हण उनकी पत्नी पाल्ही उनके पुत्र पंडित राल्ह उनकी धर्मपत्नी कोहणी उसके पुत्र वर्द्धमान-आमदेवने मोक्ष प्राप्त करनेके लिये सम्वत् १२१० वैशाख सुदी १० को बिम्बप्रतिष्ठा कराई।

(नं० ४४)

मूर्तिके आसनके अतिरिक्त बाकी हिस्सा नहीं है। चिन्ह बन्दरका मालूम होता है। करीब १।।। फुट ऊंची पद्मासन है। पाषाण काला है। पालिश चमकदार है।

लेख—सिद्धान्तिश्रीसागरसेन आर्यिका जयश्री तस्य बैल्लि (?) रतनश्री। सं० १२१६ माघसुदी १३ शुक्रे जैसवालान्वये साहु बाहड़ भार्या श्रीदेवि पुत्री सावित्री एताः प्रणमन्ति।

भावार्थः—सिद्धान्ति श्रीसागरसेन आर्यिका जयश्री उनके पासमें रहनेवाली रतनश्री और जैसवाल वंशमें पैदा होनेवाले साहु वाहड़ उनकी पत्नी श्री देवि तथा पुत्री सावित्रीने सम्वत् १२१६ के माघ सुदी १३ शुक्रवारको बिम्बप्रतिष्ठा कराई।

(नं० ४५)

मूर्त्तिके दोनों हाथोंकी हथेलियों तथा आसनके अतिरिक्त बाकी हिस्सा नहीं है। चिन्ह हिरणका है। करीब १।। फुट ऊंची पद्मासन है। पालिश चमकदार है।

लेख—सम्वत् १२०३ साहु सान्तन तस्य पुत्र लढ्ढ तस्य भार्या मलगा प्रणमन्ति नित्यम्।

भावार्थः--सम्वत् १२०३ में साहु शान्तन उनके पुत्र लढ्ढ उनकी पत्नी मलगाने बिम्बप्रतिष्ठा कराई।

(नं० ४६)

मूर्तिकी हथेली और शिरके अतिरिक्त बाकी हिस्सा उपलब्ध है। चिन्ह चन्द्रका है। करीब २ फुट ऊंची पद्मासन है। पाषाण काला है। पालिश चमकदार है।

लेख—सम्वत् १२०७ माघ बदी ८ गृहपत्यन्वये साहु सोने तस्य भार्या होवा तत्सुत दिवचन्द्र अष्टकर्मक्षयाय कारापितेयं प्रतिमा।

भावार्थ—गृहपतिवंशमें पैदा होनेवाले साहु सोने उनकी धर्मपत्नी होवा उनके पुत्र दिवचन्द्रने सम्वत् १२०७ के माघ बदी ८ को अष्टकर्मक्षयके लिये प्रतिमा प्रतिष्ठित कराई।

(नं० ४७)

मूर्तिका शिर और बाएं हाथके अतिरिक्त बाकी हिस्सा अखण्डित है। आसनका नीचेका हिस्सा कुछ छिल गया है, अतः कुछ लेख और चिन्ह नहीं

Jain Education International　For Personal & Private Use Only　www.jainelibrary.org

हैं। करीब १॥। फुट ऊंची पद्मासन है। पाषाण काला है।

लेख—सम्वत् १२११ फा······················भार्या पापा तत्सुत साहु सीतल भार्या पाला नित्यं प्रणमन्ति।

भावार्थ—संवत् १२११ (के फाल्गुन मास) में ······················पत्नी पापा उनके पुत्र साहु सीतल उनकी पत्नी पालाने बिम्बप्रतिष्ठा कराई।

(नं० ४८)

मूर्त्तिका शिर नहीं है। दोनों हथेली छिलगई हैं। चिन्ह चकवाका मालूम होता है। करीब १॥। फुट ऊंची पद्मासन है। पाषाण काला है। पालिश चमकदार है।

लेख—संवत् १२३७ आग्रहल सुदी ३ शुक्रे खंडिल्ल वालान्वये साहु वाल्हल भार्या बस्ता सुत लाखना विघ्ननाशाय प्रणमन्ति नित्यम्।

भावार्थः—खण्डेलवालवंशमें पैदा होनेवाले साहु वाल्हल उनकी पत्नी बस्ता उसके पुत्र लाखना ने संवत् १२३७ के अगहनसुदी ३ शुक्रवारको विघ्नोंके नाश करनेकेलिये इस बिम्बकी प्रतिष्ठा कराई।

(नं० ४९)

मूर्तिके आसनके अतिरिक्त बाकी हिस्सा नहीं है। चिन्ह बैलका है। वायां घुटना ढूंढ़कर मिलाया है। करीब १॥ फुट ऊंची पद्मासन है। पाषाण काला और चमकदार है।

लेख—संवत् १२०७ माघ वदी ८ मडवालान्वये साहुसेठ दायामारु तस्य सुत सुरदमाल्ह-केलाम सर्वैं प्रतिमा कारापिता।

भावार्थः—मडवालवंशमें पैदा होनेवाले साहु सेठ दायामारू उनके पुत्र सुरद माल्ह-केलाम इन सबों ने संवत् १२०७ के माघवदी ८ को यह प्रतिमा प्रतिष्ठित कराई।

(नं० ५०)

दोनों तरफ इन्द्र खड़े हैं। चिन्ह वज्रदण्डका है। शिर नहीं है, बाकी सर्वाङ्ग सुन्दर है। करीब २ फुट ऊंची खड्गासन है। पाषाण काला और चमकदार है।

लेख—संवत् १२०१ वैशाखसुदी १३ पौरपाटान्वये साहुकोके भार्या मातिणी साहु महेश भार्या सलखा।

भावार्थः—पौरपाटवंशमें पैदा होनेवाले साहुकोके उनकी धर्मपत्नी सलखाने सम्वत् १२०१ के वैशाख सुदी १३ को बिम्बप्रतिष्ठा कराई।

(नं० ५१)

मूर्त्तिका सिर्फ आसन अवशिष्ट है, जो काफी चौड़ा है। परन्तु बीचसे टूट गया है। अतः जोड़कर लेख लिया गया है। कुछ अक्षर उड़ गये हैं। चिह्न शेरका है। करीब २ फुट ऊंची पद्मासन है। पाषाण काला है। पालिश चमकदार है।

लेख—सवत् १२०३ आषाढ़ बदी ३ शुक्रे श्रीवीरवर्द्धमानस्वामिप्रतिष्ठापिकः—गृहपत्यन्वये साहु श्रीउल्कण ··············अल्हण साहु मातेण। वैश्यवालान्वये साहु वासलस्तस्य दुहिता मातिणी साहुश्रीमहीपती।·········

भावार्थः—गृहपतिवंशमें पैदा होनेवाले साहुश्री उलकण·····अल्हण तथा साहु मातने और वैश्यकुलमें पैदा होनेवाले साहु वासल उनकी पुत्री मातणी और साहुश्री महीपतिने संवत् १२०३ आषाढ़ वदी ३ शुक्रवारको यह श्रीवर्द्धमान स्वामीकी प्रतिमा प्रतिष्ठा कराई।

(क्रमशः)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भगवान् महावीर, जैनधर्म और भारत

(लेखक—श्री लोकपाल)

—❀—

जैनधर्मके बारेमें लोगोंकी जानकारी बहुत ही कम है—और जो कुछ थोड़ी बहुत है भी वह ऊपरी और विकृत है। औरोंकी कौन कहे जैन पंडितों और विद्वानोंकी भी हालत इस तरफ संतोष-जनक नहीं है।

भारतके धार्मिक एवं सामाजिक जीवन, रीति-व्यवहार तथा मान्यताओंपर विदेशी शासन-सत्ताका बड़ा ही बुरा प्रभाव पड़ा है। आज जो हम धार्मिक हठाग्रह, दुराग्रह और आपसी विद्वेष-भावना चारों तरफ देखते हैं। ईसको बनाए रखने और बढ़ाते रहनेमें और कहीं कहीं नया पैदा करनेमें इस विदेशी सत्ता-का कम हाथ नहीं रहा है। हमें, हमारे पूर्वजोंको सैकड़ों वर्षोंसे एक तरहका नकली इतिहास अबतक पढ़ाया जाता रहा है—वही अब भी जारी है—भारत कहनेको स्वतंत्र तो हुआ पर यह हानिकारक जाली पुरातत्व हमारे बीचसे अबतक नहीं हटा।

इस इतिहासका निर्माण—इसकी आख्यायिकाएं एवं लिखनेका ढंग इस तरहका रखा गया कि हम अपनी असली भारतीय संस्कृतिको एकदम भूल बैठे और धीरे धीरे हमने एक नकली और पाखंडपूर्ण रीतिनीति एवं व्यवहार अपना लिया और उसे ही आज हम भारतीय या हिन्दू संस्कृति समझे और पकड़े बैठे हैं। इस इतिहासने और भी यह किया कि हमारे दिमागमें यह बात भरदी कि हम भारतीय आदिम आर्य नहीं बल्कि कहीं मध्यएशियासे आकर बसनेवाले हैं—ताकि हम अपनेको प्राचीन और सभ्यतापूर्ण न समझकर यही समझते रहें कि हमारे पूर्वज जंगली थे और बादमें सभ्य हुए। या बाहरसे दूसरोंने आकर सभ्य बनाया। यह बात आज हमारे अंदर इतनी कूट-कूट कर भरदी गई है कि हमारे सभी पुरातत्व-वेत्ता एवं विशेषज्ञ भी इसीकी रट लगाते हैं एव उनकी जो भी धारणाएं या निर्णय होते हैं वे इसी विश्वासपर आधारित होते हैं। इतना ही नहीं, इस इतिहासने हमारे पूर्व पुरुखाओंको इस तरह करके दिखलाया कि हमें उनकी सत्तामें ही संदेह होगया और उससे भी अधिक खराबी यह हुई कि हमने अलग-अलग महापुरुषोंको अलग-अलग जातियों, धर्मों, सम्प्रदायों या गुटोंका मानकर उनका भी विरोध किया और खूब किया। हरएकने इस तरह इन महापुरुषोंको दूसरेका समझकर खूब ही गोलियां दीं और धार्मिक विद्वेष, विरोध एवं रगड़े झगड़े बढ़ा लिए। इतना तक भी रहता तब भी हमारी हालत पश्चिमीय देशोंकी तुलनामें अधिक गिरी न होती, क्योंकि वहां तो इससे भी बढ़कर शर्मनाक धार्मिक अत्याचार हुए। पर हमने जो सबसे बड़ा खराब काम—इस विदेशी सत्ताद्वारा प्रचालित इति-हासके कारण उत्पन्न बुद्धिसे—किया वह यह कि हर एक धर्मवालोंने दूसरे धर्म-प्रचारक महापुरुषोंकी प्राचीनताको भी अस्वीकार किया और हर तरहसे खंडन करते रहे। नतीजा यह हुआ कि हमारी महत्ता दिन-ब-दिन गिरती गई और हमारा बौद्धिक एवं मानसिक ह्रास भी साथ ही साथ होता गया।

पहले भी भारतमें अति प्राचीनकालसे ही अनेकों धर्म एवं मत मतांतर थे—और आपसी विरोध या वैमनस्य उतना नहीं होनेसे जब भी जो कोई चाहता दूसरे धर्मकी शिक्षाओंसे प्रभावित होकर अपना धर्म बदल लेता था। इस तरह हर समझदार या पढ़ा लिखा व्यक्ति अधिक-से-अधिक धर्मोंकी बातों-को समझने एवं ठीक ठीक जाननेकी चेष्टा करताथा—जिससे ज्ञानकी वृद्धिके साथ ही साथ बौद्धिक एवं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मानसिक विकास भी बढ़ता था। पर जबसे धार्मिक प्रतिबन्ध लगा दिए गए एवं "स्वधर्मे निधनं श्रेय: परधर्मो भयावह:" इत्यादि तथा धर्ममें बुद्धि और तर्कको लगाना मना कर दिया गया तथा यह आम फतवा या धर्माज्ञा हर एकके यहां होगई कि धर्मशास्त्रों ने जो कुछ कह दिया है एवं गुरु लोग जो उसका अर्थ लगा देते हैं उसे मानना ही होगा—और जो न मानेगा वह नास्तिक और धर्मद्वेषी या धर्मद्रोही समझा जायगा—तबसे ही ये धार्मिक विद्वेष लड़ाई-झगड़े इत्यादि बढ़ गए हमने एकदम दूसरेकी बातें जानना छोड़ दिया—धीरे धीरे अपने धर्मके तत्वोंको भी भूल गए मानसिक एवं बौद्धिक विकास भी रुक कर धीरे धीरे एकदम गायब ही होगया।

धर्माचार्योंने—चाहे वे किसी भी धर्मके हों—बहुत सोचने-विचारने, अनुशीलन और मनन करनेके बाद ही कोई तत्व या Theory पेश की है। हर एक ने जैसा और जितना ठीक समझा अपने तरीकेसे—अपनी बुद्धिके अनुसार लोगोंके सामने रखा। माना कि इनमें बहुत तो सच्चे Sincere of honest ईमानदार रहे और बहुतोंने अपनी विद्वत्ता एवं प्रतिभा तथा प्रभावका अनुचित उपयोग भी किया—जिससे सत्यके बजाय असत्य फैलनेमें काफी सहायता मिली। सब कुछ होते हुए भी इतना तो निश्चित है कि ये लोग बहुत बड़े विद्वान् एवं विचारवान् या Thin less थे। फिर आज जो हवा हम चारों तरफ देखते हैं कि एक महज अदना मामूली आदमी भी जो धर्म या धार्मिक तत्वोंका—क ख ग घ—भी नहीं जानता वह भी दूसरे धर्मवाले विद्वान् और गुरुकी निन्दा कर देता है और हंसी उड़ा देता है—क्या यह कम मूढ़ताजनक और मूर्खतापूर्ण है? क्या यह सचमुच अपनी बेवकूफी और अज्ञानताको ही नहीं जाहिर करना है? आज हमारी हालत यह है कि हम ऐसा करके ही अपनेको धार्मिक एवं बहादुर समझते हैं जब कि बात ठीक इसके विपरीत होनी चाहिए।

धर्मतत्त्वों या धर्माचार्योंकी खामखाहमें हंसी उड़ा देना या छोटा या गलत समझ लेना सच पूछिए तो उन तत्वोंमें जरा भी कमी नहीं लाता। वे तो हमेशा वैसेके वैसे ही रहते हैं। हाँ, ऐसा करनेवाला उनकी जानकारीसे और ज्ञानके विकाससे वंचित अवश्य हो जाता है।

इसी वातावरणमें जैनधर्म या जैन धर्माचार्योंके विरुद्ध जो घना द्वेषका या असहानुभूतिका या असहयोगकी भावनाका प्रचार भारतमें चारों तरफ जोरोंमें अब भी मौजूद है। उसने देशकी भारी हानि की है। जैनधर्मके तत्व एवं शिक्षाएं तो अब भी वही हैं और दूसरे धर्मोंकी भी। पर इस तरहके परस्परके द्वेष-विद्वेष एवं मनोमालिन्यने एक-दूसरेकी बातोंको जाननेसे हमें वंचित रखा और इस तरह हमारा मानसिक तथा बौद्धिक विकास रुकनेके साथ ही आपसी कटुता और बढ़नेमें ही सहायक हुई। पर धार्मिक शिक्षाओंमें तो फिर भी कोई परिवर्तन नहीं हुआ। हम इस सत्यको अपनी धर्मान्धताके जोशमें एकदम भूल जाते हैं और यह कि ऐसा करके जोशमें हम दूसरोंका नहीं, बल्कि स्वयं अपना ही नुकसान करते हैं।

जैनधर्म बुद्धिवादका समर्थक हामी या प्रतिपादक है। वह कोई भी ऐसी बात स्वीकार करने से इनकार करता है जो बुद्धि और तर्ककी कसौटीपर ठीक और खरा एवं व्यावहारिक न उतरे, इनकार ही नहीं करता अपने सभी Followers अनुयायियोंको ऐसा करनेसे मना भी करता है। वह कहता है कि किसी भी तत्त्वका, देवताका, गुरूका और शास्त्रका वगैर परीक्षा लिए और परीक्षा लेनेपर जब तक ठीक न उतरे या ठीक न जंचे विश्वास मत करो, मत मानो। वह कहता है कि ऐसा करके ही तुम सत्य और ठीक मार्गपर स्थित होगे या स्थिर होगे एवं उससे विचलित न होगे, कोई बहका नहीं सकेगा—धर्मके नामपर ढोंग और आडम्बरके शिकार होकर अधार्मिकता करनेसे बच सकोगे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इत्यादि । इतना ही नहीं, वह हर एक नई बातको हर संभावित पहलू—हर दृष्टिकोणसे देखनेकी सख्त ताकीद या हिदायत देता है । एव देश, काल तथा व्यावहारिकताके अनुसार ही उन्हें उपयोगमें लानेको कहता है ताकि कमसे कम गलती हो सके । किसी नई बातको जिसके बारेमें पूरी जानकारीकी जरूरत है उसे एक बार सहसा मान लेने या एकतर्फा धारणा कोई भी उसके बारेमें बना लेनेकी हानियों एवं कटु प्रभावोंसे सचेत करता है तथा हर गंभीर प्रश्नको हर पहलूसे सोच-विचार जाँचकर और अपनी हर शंकाएं यथासंभव निवारण करके ही स्वीकार करने या फिर आगे बढ़नेको कहता है । इसे ही हम "अनेकान्त" कहते हैं । आजका आधुनिक विज्ञान Science और इसके सारे कारवार मशीनपुर्जे इसी अनेकान्तके व्यावहारिकरूप हैं जो अन्यथा संभव नहीं होसकते थे । एक मशीनका पुर्जा बनानेके लिए उसकी ड्राइंग (नकशा) कई तरफसे देखकर (बाहरसे या बीचसे काटकर Sectional) बनाई जाती है तब उसका पूरा-पूरा Detail विवरण और जानकारी प्राप्त होती है जिससे वह पुर्जा कारखानेमें ठीक-ठीक with precision बन सकता है । यही बात और सभी कामोंके लिए भी है—कि किसी भी वस्तु या प्रश्नका या विचारणीय विषयका हर पहलू और दृष्टिकोण या हर तरफसे देखना और विचारना उसके विशद या अधिक-से-अधिक ठीक जानकारीके लिए अत्यन्त जरूरी है—इसके बगैर जो भी जानकारी होगी वह सर्वांगीण पूर्ण, सही और दुरुस्त न होकर एकांगी और defective अपूर्ण और विकृत या अधकचरी होगी । विज्ञान या वैज्ञानिक तरीकोंका जिस विषयमें भी उपयोग किया जायगा वही तरतीबबार और अनेकान्तरूपी होगा । तभी हमें वस्तुओंका सच्चा स्वरूप एवं गुण ठीक-ठीक मालूम होसकेंगे । हमने इसी अनेकांत या आधुनिक भाषामें इस वैज्ञानिक तरीकोंको छोड़कर अपना बड़ा ही नुकसान किया है । जब पश्चिमी देशोंने इसको अपनाकर अपनी हर तरफ उन्नति की, हमने इसे भगाकर अवनति की । आज जरूरत है इसे फिरसे जीवन और समाजके हर पहलूमें उचित एवं व्यावहारिकरूपसे अपनाने और काममें लानेकी—यदि हम सचमुच स्थायी और सुव्यवस्थितरूपसे उन्नति करना और करते जाना चाहते हैं तो ।

जैनधर्मने धार्मिक विभिन्नताओं या मतभेदोंको कभी भी संघर्षणात्मक रूप नहीं दिया । हां, तात्विक या तार्किक खंडन मंडनका अवश्य व्यवहार किया । इतना ही नहीं अपने अनुयायियोंको बराबर यह कहता है कि हर एक धर्मका अनुशीलन, मनन एवं मथन करना चाहिये और तब बुद्धि और तर्कका व्यवहार करके जो कुछ ठीक जंचे उसे मानना एवं स्वीकार करना चाहिये । तभी हम गलतियां कम-से-कम करेंगे और जानकारी अधिकसे अधिक होगी और इसतरह ही विश्वास या धारणा होगी वह भी अधिक-से-अधिक सुदृढ एवं स्थायी होगी । यह स्थायित्व एवं परिष्कृतपना किसी भी व्यक्ति या समाजकी उन्नतिके लिए अत्यन्त जरूरी है । इस रीतिको छोड़कर हमने जबसे एक दूसरेकी बातें जाननेकी मनाही करदी और अलग-अलग रहने लगे तभीसे फूट, वैर, विरोध और संघर्षणोंकी वृद्धि हुई और होती गई एवं हमारा दिन-ब-दिन मानसिक, शारीरिक एवं नैतिक ह्रास होता गया और हमारा वैयक्तिक पतन होते-होते सामाजिक एवं राष्ट्रीय पतन भी पूर्णरूपसे होगया । इस मनोवृत्तिको दूर करके ही हम उन्नति कर सकते हैं और तभी हमारी सर्वाङ्गीण या सवतोमुखी विकास होसकता है अन्यथा नहीं । यदि किसी तरह कुछ हुआ भी तो वह स्थायी या असली न होकर थोड़े समयके लिये और नकली ही होगा । हमें धार्मिक खंडन-मंडनको केवल जबानी जमा-खर्च ही तक सीमित रखना चाहिये उसे संघ-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

षण या खुला विद्वेष या लड़ाईका रूप नहीं लेने देना चाहिये, न उससे कटुता ही किसी तरहकी होनी चाहिये। वस्तुका ठीक-ठीक असली स्वरूप जाननेके लिये यह खंडन-मंडन विशद और निष्पक्षरूपमें होना जरूरी है। ज्ञान किसी भी वस्तु या विषयका ऐसा करके ही परिष्कृत हो सकता है।

भगवान महावीर जैनधर्मके चौबीसवें और आखिरी प्रचारक, परिष्कारक या प्रवर्तक हुए। हमें यह जानबूझकर हमारे विदेशी सत्ताधिकारियोंद्वारा यह बतलाया जाता रहा कि महावीर जैनधर्मके संस्थापक हैं या हुए। और यह केवल इसलिए कि भारत अपनी पुरानी और प्राचीनतम संस्कृतियोंको भूल जाय। यदि संभव होता और ऐतिहासिक प्रमाण नहीं रहते तो इन लोगोंने भगवान महावीर या बुद्धको ईसासे पांचसौ वर्ष पूर्व होनेके बजाय पाँचसौ वर्ष बाद होना ही दिखलाते। यदि तिब्बत और चीनकी पुस्तकें नहीं रहतीं तो महावीर और बुद्धकी सत्ता या होना ही शंकाजनक बतलाई जाती या अधिक-से-अधिक गड़रियोंके सरदारके रूपमें ही रहते या कुछ ऐसा ही होता। परन्तु वहां ये मजबूर थे और कम-से कम इन्हें इन भारतीय धर्मोंको पश्चिमीय धर्मों एवं संस्कृतियोंसे पहलेका स्वीकार करना ही पड़ा। फिर भी इन्होंने लगातार यही चेष्टा की है हमारे दिमागोंमें भरनकी कि रोम, ग्रीस या मिश्र और बैबीलोनियां वगैरहकी संस्कृतियां भारतीय संस्कृतियोंसे पुरानी थीं या हैं या रही हैं। और इस बातकी शिक्षा या प्रचार इस तरीकोंसे Incissent लगातार की गई है कि हमारे विशेषज्ञोंने भी वैसा ही मानना ठीक समझा जाने लगा या समझा गया। यदि केवल जैनधर्मको ही लिया जाय और उसकी प्राचीनताका ठीक unbiased अनुसंधान किया जाय और धार्मिक विद्वेष-भावना या हम बड़े तो हम बड़ेकी भावना छोड़कर देखा जाय तो इससे भारतका गौरव बढ़ेगा ही। और भारतकी संस्कृतिकी प्राचीनतमता अपने आप सावित हो जायगी या हो जाती है। हमारी भारतीय संस्कृति या पृथक संस्कृतियां कितनी पुरानी हैं यह हमारे आधुनिक विशेषज्ञोंद्वारा अभी तक कुछ निश्चित नहीं हुआ है। पुराने खडहर-भग्नावशेष अभी चारों तरफ भरे पड़े हैं जिनकी खुदाई बाकी है। अङ्गरेजोंने जो कुछ थोड़ी बहुत खुदाई इधर-उधर करके हमें जो कुछ बतलाया अभी तक हम उसीपर निर्भर हैं और सब्र किए बैठे हैं। पर अब हमारी स्वतंत्र सरकारको चुप बैठना ठीक नहीं। अपनी संस्कृतिकी प्राचीनता सावित करना परम आवश्यक है। मथुराकी खुदाईसे हमने एक-दूसरेको नया कह कहकर देशकी बड़ी भारी हानि की। अपनी सारी संस्कृतियोंकी प्राचीनताको ही खड़-मंडल कर दिया। यह ठीक नहीं।

भगवान ऋषभदेव जैनधर्मके सबसे प्रथम तीर्थङ्कर या प्रचारक हुए। पहले जैनधर्म ही सनातन सत्यपर निश्चित या नियत होनेसे "सनातन धर्म" कहा जाता था। पर इधर करीब एक हजार वर्षोंसे जब दूसरोंने इस शब्दको अपना लिया और जैनधर्मको "जैन" नामकरण दे दिया तबसे यह बजाय "सनातन धर्म" के "जैनधर्म" होगया। कुछ लोगोंने इसे सनातन जैनधर्म कहकर प्रचारित करनेकी चेष्टा की पर वे सफल न हो सके। भगवान ऋषभदेवके बाद समय समयपर तेइस तीर्थङ्कर और हुए जिन्होंने उसी एक नियत या निश्चित सत्यका प्रचार किया जिन्हें जैन तत्त्व या जैनधर्मके नामसे आज हम जानते हैं। आखिरी चौबीसवें तीर्थङ्कर भगवान महावीर हुए जिनका पावन जन्म आजसे पच्चीससौ वर्ष पहले वैशालीके लिच्छवी वंशके प्रजातत्रके राजवंशमें हुआ। उन्होंने विवाह नहीं किया। बाल-ब्रह्मचारी रहे। वयस्क होनेपर उन्होंने संसारके दुःखोंको देखकर उसे दूर करनेका उपाय जाननेके लिये राज्य छोड़कर कठिन तपस्या आरंभ की। तपश्चर्याके पश्चात् जिस सत्यपर वे पहुँचे वह वही सनातन वैज्ञानिक सत्य था जिसे हम

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जैनधर्ममें व्यक्त पाते हैं। पूर्णज्ञान प्राप्त करनेके बाद उनका प्रथम उपदेश राजगृहमें जिसे आजकल 'राजगिर' कहते हैं वहाँ एक महती सभामें श्रावण-वदि प्रतिपदाको हुआ, जो तिथि वीर-शासन-जयन्ती-के रूपमें आज एक पावन पर्वका रूप धारण किए हुए है। कहते हैं कि उस सभामें मनुष्य और मनुष्यनियोंके अतिरिक्त सभी जीवमात्र—पशु-पक्षी वगैरहके बैठनेका प्रबन्ध किया गया था और भगवानके तीव्र अहिंसामय तेजसे खिंचकर अनगिनत पशु-पक्षी आए थे और उन्होंने भी उनकी अमृतवाणीके स्पर्शमात्रसे ज्ञान प्राप्त किया। मानवोंका तो फिर पूछना ही क्या। आज तो हम मनुष्य मनुष्यको एक साथ एक सभामें बैठने देना पसन्द नहीं करते। ऊँच-नीच, छूत-अछूत वगैरहका इतना भेद-भाव बढ़ा रखा है कि जो अपनेको बड़ा, ऊँचा या पवित्र समझते हैं उन्होंने अपने इसी घमंडमें धर्म या धार्मिक तत्वोंकी असलियतको छोड़ ढोंग और मायाचारको अपना लिया और उसीको धर्माचार समझकर पतन होते-होते एकदम नीचताकी सीमाको पार कर गये। अपने पूज्यपना या पवित्र होनेके मिथ्याभिमानमें इन लोगोंने अपनी विशेष मानसिक बौद्धिक एवं नैतिक उन्नति करना छोड़ दिया और अपने बड़प्पन, पूज्यपना या ऊँचे होनेके घमंडमें या उसे अक्षुण बनाये रखनेके लिए इन थोड़ेसे लोगोंने अगणित लोगोंको अपनी सामाजिक शक्ति या प्रभावद्वारा नीच, अछूत या अपवित्र कहकर उन्हें ऐसा बनाए रखा और ऐसा बने रहनेके लिये हर-तरहसे मजबूर और बाध्य किया—इस तरह स्वयं पतित हुए और दूसरोंको भी पतित किया। और इस डरसे कि कहीं सुशिक्षित या सुसंस्कृत होकर ये पतित या नीच कहे जानेवाले कहीं उन लोगोंसे ऊपर न आजायँ जो पवित्र या ऊँचे कहे जाते हैं—इन ऊँचे कहे जानेवालोंने उनको हर-तरहसे बौद्धिक मानसिक एवं नैतिक विकास करनेसे रोक दिया। आप भी गिरे और दूसरोंको भी गिराया। फिर भला समाज और देशका पतन न होता तो और क्या होता। नतीजा हुआ कि हमने सदियों तक गुलामी भुगती और अब भी जब स्वतंत्र हुए हैं तब हमारा मानसिक और नैतिक धरातल इतने नीचे चला गया है कि हम अपनी इस स्वतंत्रताका वास्तविक फल एकदम नहीं पा रहे हैं। हमारे ऊँचे नेता चिल्ला-चिल्लाकर थक से रहे हैं पर हमारा धर्मान्धकार अब भी जल्दी नहीं हटता।

संसारमें सभी जीव बराबर हैं—सभीमें वही आत्मा है जो किसी भी एक आदमीमें है। जैनधर्म मानवीय बराबरी ही क्यों वह तो सार्वभौम एवं अखिल भूतको बराबरी तथा ऊपर आनेका और ईश्वरत्व प्राप्त करनेका सत्व या जन्मसिद्ध अधिकार मानता और कहता है—भले ही आज हम अपनी अज्ञानता एवं वहममें इसे अन्यथा मानते या कहते रहें यह दूसरी बात है। कुछ स्वार्थियोंने अपना नीच मतलब गांठनेके लिए हर-तरहके गलत-फलत या गन्दी बुरी रीतियां या विश्वास फैला दिये और धार्मिक तत्वोंका मतलब अपने मन-माना जैसा-चाहा विकृतरूपमें लोगोंको समझा दिया। यही सारे अनर्थोंका मूल रहा है। उन्हीं विकृत बातों—रीतियों या रूढ़ियोंको हम आज भी वगैर सोचे समझे पकड़े हुए हैं। यदि कोई इनसे खिलाफ (विरुद्ध) कुछ कहना चाहता है तो उसे वजाय सुननेके हम मारने या काटने दौड़ते हैं। पर इससे तो धर्मकी ही हानि सर्वत्र होरही है। धर्म और धर्मके साथ ही सब कुछ नीचे चलता जाता है। अब भारत स्वतंत्र हुआ और जरूरत इस बातकी है कि हम विदेशी प्रभावसे मुक्त इस वातावरणमें स्वयं कुछ सोचें समझें और विचारें एवं हर-एककी बात जाननेकी चेष्टा करें—वगैर किसी विरोध या Bias के—तभी हमें सत्यसे भेंट होगी और फिर हम अपने या धर्मकी असलियतको सचमुच पावेंगे। और तभी हमारी एवं हमारे धर्मकी, हमारी जातिकी, हमारी संस्कृतिकी, देशकी स्थायी उन्नति होगी और होती जायगी।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ऐसा यदि हम करेंगे तो मेरा विश्वास है कि पुन: एक समय ऐसा आवेगा जब लोग जैनधर्मकी महत्ताको, उसकी वैज्ञानिकताको एवं सर्व-प्रियता तथा सच्चाईको मानने और समझने लगेंगे।

भगवान् महावीर केवल जैनधर्मके ही नहीं, विश्वके लिए परमपूज्य हुए और उन्होंने विहार प्रान्तको ही नहीं सारे देश और इस पृथ्वीको भी अपने चरणोंसे पवित्रता प्रदान की। अत: विहारको ही क्यों सारे भारतको भगवान महावीरके लिए गर्व है और होना चाहिये। महात्मा गांधीने भी भगवान महावीरकी जीवनीसे अहिंसाका व्यावहारिक ज्ञान लिया और युग बदल दिया।

आज हमारे वैज्ञानिक जैनधर्मके सूक्ष्म वैज्ञानिक प्रतिपादन या तत्त्वोंसे एकदम अज्ञान हैं और समझते हैं कि विज्ञानका Election या Iow Theopv पश्चिमसे निकला है—जिसके ऊपर आज सारे विज्ञानका दारोमदार है। पर इस Election Theory की व्याख्या अपने विशद एवं व्यवस्थित तथा सूक्ष्मरूपमें सब कुछ जाननेवाले सर्वज्ञ जैन-तीर्थंकरोंद्वारा पहले ही की गई है, जिसे शायद अभी हमारे आधुनिक वैज्ञानिक कुछ और आगे जब बढ़ेंगे तब पावेंगे कि हाँ, जो कुछ जैनधर्ममें पुद्गल और जीवके बारेमें कहा गया है उसीके ऊपर सारे संसारका अस्तित्व है। जैनधर्ममें वर्णित ६ तत्वोंको लोग भले ही अपने धार्मिक अहंमें न माननेका दावा करते हों, पर आज तक हजारों वर्षोंसे भी किसीने उनका खंडन अब तक नहीं किया है—न जिन्होंने चेष्टा की है वे सफल ही हो पाये हैं। जैनधर्म और इसके तत्वोंकी विशद वैज्ञानिक जानकारी हर तरह किसी भी व्यक्तिको ऊपर ही उठावेगी एवं देश या संसार भी इसी तरह ऊपर उठ सकता है तथा सच्चा सुख और स्थाई शान्ति स्थापित होसकती है।

वीर-शासन-जयन्ती

(श्री जिनेश्वरप्रसाद, जैन)

—:※:—

श्रावण कृष्णा प्रतिपदाका पुण्य-दिवस श्री १००८ भगवान महावीर स्वामीका शासन-जयन्ती दिवस है। इस दिन आजसे लगभग २५०० वर्ष पूर्व भगवानका प्रथम उपदेश उस समयके प्रकाण्ड-तत्त्ववेत्ता गौतम इन्द्रभूतिके मिलते ही विहारप्रान्त-की राजगृही नगरीके विपुलाचलपर हुआ था।

भगवानने अपने उपदेशमें कहा कि 'ऐ जगतके प्राणियो! तुम शरीरसे ममत्वका त्यागकर आत्माके अजर, अमर, अनन्त गुणोंके पिण्ड शुद्ध-बुद्ध-सिद्ध-स्वरूपको प्राप्त करो, जिससे संसारके दु:खोंसे छूट-कर निजानन्दरसमें लवलीन हो सको।' भगवानके प्रथम आध्यात्मिक उपदेशका सार यही था। हम सबको उसपर चलकर आत्म-कल्याण करना चाहिए और शासन-जयन्तीके स्मरणार्थ अपना कर्त्तव्य-पालन करना चाहिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आप्तकी श्रद्धाका फल

(श्री १०५ क्षुल्लक पूज्य गणेशप्रसादजी वर्णी)

—:※:—

आत्मानुशासनमें गुणभद्र स्वामी लिखते हैं :—

सर्वः प्रेप्सति सत्सुखाप्तिमचिरात्सा सर्वकर्मक्षयात्,
सद्वृत्तात्स च तच्च बोधनियतं सोऽप्यागमात्स श्रुतेः।
सा चाप्तात्स च सर्वदोषरहितो रागादयस्तेऽप्यत-
स्तं युक्त्या सुविचार्य सर्वसुखदं सन्तः श्रयन्तु श्रियै॥

'संसारके यावन्मात्र प्राणी सुख चाहते हैं, सुखकी प्राप्ति समस्त कर्मोंके क्षयसे हो सकती है। वह कर्मोंका क्षय सम्यक्चारित्रसे हो सकता है। सम्यक्चारित्र सम्यग्ज्ञानसे सम्बन्ध रखता है। सम्यग्ज्ञान आगमसे होता है, आगम श्रुतिसे होता है, श्रुति आप्तसे होती है और आप्त वह है जिसके रागादि दोष नष्ट हो चुके हैं। इस प्रकार युक्तिद्वारा विचार कर सर्व सुखोंको देनेवाले श्रीअरहन्तदेवकी उपासना करो, उसीसे इहलौकिक और पारलौकिक लक्ष्मी प्राप्त हो सकती है।'

यथार्थमें आप्त भगवानकी श्रद्धा बड़ा कल्याण करनेवाली है। आप्त उस पवित्र आत्माको कहते हैं जिसके हृदयसे रागादि दोष और ज्ञानावरणादि आवरण निकल चुके हैं, जो सर्वज्ञ है और मोक्षमार्गका नेता है ऐसे आप्तके सुदृढ़ श्रद्धानसे यदि जीवका कल्याण नहीं होगा तो किससे होगा? भयसे आप लोगोंके चेहरे सूख रहे हैं, कहते फिरते हो कोई हमारा रक्षक नहीं है। संसारमें कौन किसकी रक्षा करता है। आप लाग शूरवीरताको भूल गये इसलिये दुःखी होगये। शूरवीर ही संसारका मार्ग चलाता है और शूरवीर ही मोक्षका मार्ग चला सकता है। आप पुरुष हैं। पुरुष होकर इतने भयभीत होनेकी क्या आवश्यकता? यदि आप अपनी रक्षा नहीं कर सकते तो लुंगी पहिन लो, पुरुषत्वका गर्व छोड़ दो। अन्तरङ्गमें स्त्री जैसी भीरुता और ऊपर पुरुषत्वका वेष यह शोभा नहीं देता।

एक आदमी था। शरीरका सुन्दर था। उसने स्त्रियों जैसे हाथ मटकाना और आंख चलाना सीख लिया। राजाका दरबार भरा था। अच्छे-अच्छे लोग उसमें बैठे हुए थे। वह आदमी भी स्त्रीके वेषमें वहाँ पहुँचा। सब लोग उसे देखकर हँसने लगे। सबसे बड़ा जो आफीसर था वह भी हँसने लगा। उसने कहा हँसनेकी क्या बात है? तुम लोग अंतरङ्गसे स्त्री हो और मैं बहिरङ्गका। यदि तुम अन्तरङ्गके स्त्री न होते तो इतनी बहुसंख्यक जनताके ऊपर मुट्ठी भर लोग राज्य कैसे करते? वास्तवमें यही बात है, तुम्हारा राज्य तुम्हारे प्रमाद और तुम्हारी कायरतासे गया है। अंग्रेजोंने और मुसलमानोंने क्या किया? उस समय तुम्हारी जैसी हालत थी उसमें यदि अंग्रेज न आते तो कोई उनके दादा आते। इतना खयाल अवश्य रक्खो कि अपनेद्वारा किसीका बुरा न हो जाय, पर जो तुम्हारा विघात करनेको आवे उससे अपनी रक्षा जिस तरह बने कर सकते हो, ऐसी जिनागमकी आज्ञा है।

गुरु वही है, जो साक्षात्मोक्षमार्गमें प्रवेशकर चुका है, ऐलक मुनिकी सब क्रिया पालते हैं पर उनकी एक हाथकी लंगोटी उनके गुरु होनेमें बाधक है। सेर तभी होगा जब ८० तोलेका होगा, चार आना भर भी कम रहनेपर सेर नहीं कहला सकता, पर अंशतः गुरुत्व तो उनमें भी है। गुरुत्व ही क्यों? आप्तपना भी अंशतः उनमें प्रकट हो जाता है। संयमियोंकी बात जाने दीजिये, अविरत सम्यग्दृष्टिमें भी आप्तका अंश जागृत हो जाता है इसीलिये तो उसे 'घरमांहि जिनेश्वरका लघुनंदन' कहा।

यथार्थ देव, गुरु और धर्मकी भक्ति करना

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्रावकका मुख्य कर्तव्य है। आगमका अध्यन करना महोपकारी है। यदि आगमके ज्ञाता न हों तो आपकी सभाओं और मन्दिरोंकी शोभा कैसे होसकेगी। उन पत्थरके खम्भोंसे मन्दिरकी शोभा नहीं है, ज्ञानवानोंसे मन्दिरकी शोभा है। लोग कहते हैं कि इन विद्यालयोंमें हमारा लाखों रुपया व्यर्थ चला गया, कुछ भी लाभ नहीं हुआ। पर मैं कहता हूँ कि तुम्हारे (सागर) विद्यालयसे ये तीन विद्वान् (पं० दयाचन्दजी, पन्नालालजी, माणिकचन्दजी) तैयार होगये तो तुम्हारा लाखोंका खर्च सफल होगया। तुम्हीं सोचो ज्ञानके बिना क्या शोभा?

देवकी पूजाका अभिप्राय यह नहीं कि उन्हींको हमेशा पूजते रहो। अरे! वह तो तुम्हारा रूप है। वैसा तुम्हें बनना है। उपादान तो तुम्हीं हो। प्रयत्न तो तुम्हींको करना है। श्रीजिनेन्द्रदेव निमित्तमात्र हैं। आपका बच्चा पढ़ गया, पंडितजीने पढ़ा दिया। क्षयोपशम बच्चेकी आत्मामें था। प्रयत्न उसने किया, पर उसका श्रेय पंडितजीको दिया जाता है, यह निमित्तकी प्रधानतासे कथन है। निमित्तकी प्रधानतासे ही देवको कल्याणकारी माना जाता है, उपादानकी अपेक्षासे नहीं। यथार्थमें आपकी आत्मा ही देव है वही पूज्य है। एक किस्सा है। आप लोगोंने कई बार सुना है। फिर भी कहता हूँ :—

एक आदमी था। उसकी स्त्री थी। स्त्री बड़ी चतुर थी। जब उसका पति परदेश जाने लगा तो उसे डर लगा कि यह वहाँ धर्मभ्रष्ट न हो जाय। जाते समय उसने उसे एक गोलवटैया दी और कहा कि इनकी पूजा किये बिना खाना नहीं खाना और जब पूजा करो तब इनके सामने प्रतिज्ञा किया करो कि 'मैं पाप नहीं करूँगा।' पुरुष था भोला-भाला, उसने स्त्रीकी बात मान ली। वह एक दिन पूजा करके कहीं गया कि इतनेमें चूहाने वटैयापरके चावल खा लिये और उसे लुड़का दिया। उसने समझा कि इस वटैयासे बड़ा तो यह चूहा है इसे ही पूजना चाहिये। वह चूहाको पूजने लगा। एक दिन बिलावके सामने चूहा डरकर रह गया। उसने समझा यही बलवान् है इसे पूजना चाहिये। एक दिन कुत्ता आया। उसके सामने बिलाव डर गया। अब वह कुत्तेको पूजने लगा। परदेशसे कुत्तेको साथ ले आया। एक दिन कुत्ता चौकामें चला गया। स्त्रीने उसके शिरमें बेलन जमा दिया। वह कईं-कईं करता हुआ भागा। पुरुषने सोचा यह स्त्री कुत्तेसे बड़ी है इसे ही पूजना चाहिये। अब वह उसे पूजने लगा। एक दिन स्त्रीने दालमें नमक अधिक डाल दिया जिससे उस पुरुषने उसके शिरमें एक चांटा मार दिया। वह रोने लगी। पुरुषने समझा अरे इससे बलवान् तो मैं ही हूँ। मुझे स्वयं अपने आपकी पूजा करना चाहिये। सो भैया! कल्याण तभी होगा जब आप अपनी पूजा करने लगेंगे, लेकिन जब तक वह दशा प्राप्त नहीं हुई है तब तक देव आदिको पूजना ही है।

कुदेव, कुगुरु और कुधर्मकी सेवा करना सो अधर्म है। जो स्वयं रागी-द्वेषी है, विषय-वासनाओंमें आसक्त है उसकी आराधनासे कल्याण होगा, यह संभव नहीं। जहाँ धर्मके नामपर मैं-मैं करते हुए निबल जन्तुओंके गलेपर छुरी चला दी जाय वह क्या धर्म है? ऐसे धर्मसे क्या किसीका कल्याण होसकता है? कल्याण तो उस धर्मसे होगा जिसमें प्राणिमात्रका भला चाहा जाता है। एक पंडित थे मन्मथ भट्टाचार्य। बोले जैनधर्मने भारतवर्षको बरबाद कर दिया। इनकी अहिंसाने दुनियाको कायर बना दिया। दूसरा एक समझदार वहीं था। उसने उत्तर दिया। जैनधर्मने भारतको बरबाद नहीं किया, जैनधर्म कायरता नहीं सिखाता। वह इतना वीरतापूर्ण धर्म है कि उसे यदि कोई घानीमें भी पेल देवे तब भी उफ नहीं करे। भारतवर्षको नष्ट किया है हमारी विषयासक्तिने, हमारे प्रमादने, हमारी फूटने।

संसार भरकी दशा बड़ी विचित्र है। कलका करोड़पति आज भीख मांगता फिरता है। संसारकी दशा एक पानीके बबूलेके समान है। संसारी जीव मोह

के कारण अन्धा होकर निरन्तर ऐसे काम करता है जिससे उसका दुख ही बढ़ता है। यह जीव अपने हाथों अपने कंधेपर कुल्हाड़ी मार रहा है। यह जितने भी काम करता है प्रतिकूल ही करता है। संसारकी जो दशा है, यदि चतुर्थकाल होता तो उसे देखकर हजारों आदमी दीक्षा ले लेते। पर यहाँ कुछ परवाह नहीं है। चिकना घड़ा है जिसपर पानीकी बूंद ठहरती ही नहीं। भैया! मोहको छोड़ो, रागादिभावोंको छोड़ो, यही तुम्हारे शत्रु हैं, इनसे बचो। वस्तुतत्त्वकी यथार्थताको समझो। श्रद्धाको दृढ राखो। धनंजय सेठके लड़केको सांपने काट लिया, वेसुध होगया। लोगोंने कहा वैद्य आदिको बुलाओ, उन्होंने कहा वैद्योंसे क्या होगा? दवाओंसे क्या होगा? मंत्र-तंत्रोंसे क्या होगा? एक जिनेन्द्रका शरण ही ग्रहण करना चाहिये। मंदिरमें लड़केको लेजाकर सेठ स्तुति करता है :—

"विषापहारं मणिमौषधानि मन्त्रं समुद्दिश्य रसायनं च।
भ्राम्यन्त्यहो न त्वमिति स्मरन्ति पर्यायनामानि तवैव तानि॥"

इस श्लोकके पढ़ते ही लड़का अच्छा होगया। लोग यह न समझने लगें कि धनंजयने किसी वस्तुकी आकांक्षासे स्तोत्र बनाया था, इसलिये वह स्तोत्रके अन्तमें कहते हैं :—

"इति स्तुतिं देव! विधाय दैन्याद्वरं न याचे त्वमुपेक्षकोऽसि।
छाया तरुं संश्रयतः स्वतः स्यात्कश्छायया याचितयात्मलाभः॥"

हे देव! आपका स्तवन कर बदलेमें मैं कुछ चाहता नहीं हूँ और चाहूँ भी तो आप दे क्या सकते हैं? क्योंकि आप उपेक्षक हैं—आपके मनमें यह विकल्प ही नहीं कि यह मेरा भक्त है इसलिये इसे कुछ देना चाहिये। फिर भी यदि मेरा भाग्य होगा तो मेरी प्रार्थना और आपकी इच्छाके बिना ही मुझे प्राप्त हो जायगा। छायादार वृक्षके नीचे पहुँचनेपर छाया स्वयं प्राप्त होजाती है। आपके आश्रयमें जो आयेगा उसका कल्याण अवश्य होगा। आपके आश्रयसे अभिप्राय शुद्ध होता है और अभिप्रायकी शुद्धतासे पापास्रव रुककर शुभास्रव होने लगता है। वह शुभास्रव ही कल्याणका कारण है।

देखो! छाया किसकी है? आप कहोगे वृक्षकी, पर वृक्ष तो अपने ठिकानेपर है। वृक्षके निमित्तसे सूर्यकी किरणें रुक गईं, अतः पृथिवीमें वैसा परिणमन होगया, इसी प्रकार कारणकूट मिलनेपर आत्मामें रागादिभावरूप परिणमन होजाता है। जिसप्रकार छायारूप होना आत्माका निजस्वभाव नहीं है। यही श्रद्धान होना तो शुद्धात्मश्रद्धान है—सम्यग्दर्शन है।

(सागर-चतुर्मासमें दिया गया वर्णीजीका एक प्रवचन)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

साहित्य-परिचय और समालोचन

[इस स्तम्भमें समालोचनार्थ आये नये ग्रन्थादि साहित्यका परिचय और समालोचन किया जाता है। समालोचनाके लिये प्रत्येक ग्रन्थादिकी दो-दो प्रतियाँ आनी जरूरी हैं। —स० सम्पादक]

१. मोक्षमार्गप्रकाश—लेखक, आचार्यकल्प पं० टोडरमलजी। सम्पादक पं० लालबहादुर शास्त्री। प्रकाशक, भारतवर्षीय दि० जैन संघ, चौरासी-मथुरा। पृष्ठ संख्या, सब मिलाकर ४२८। मूल्य, सजिल्द प्रतिका आठ रुपया।

पुस्तुत ग्रन्थ पंडितप्रवर टोडरमलजीके मोक्षमार्ग-प्रकाशका ढूंढारी भाषासे खड़ी भाषामें अनूदित संस्करण है। इस संस्करणमें भाषापरिवर्तनके साथ विषयको स्पष्ट करनेके लिये अनेक ग्रन्थोंके आधारसे टिप्पण भी फुटनोट्में दिये गये हैं जिनसे जैनेतरग्रन्थ-कारोंकी मान्यताओंका भली-भांति परिचय मिल जाता है। और ग्रन्थगत विशेष कथनोंको स्पष्ट करनेके लिये परिशिष्ट भी लगाये गये हैं। इससे स्थलोंका अच्छा बोध होजाता है।

ग्रन्थके आदिमें ५० पृष्ठकी महत्वकी प्रस्तावना है जिसमें ग्रन्थकर्ता पं० टोडरमलजीके जीवन-इतिवृत्त-पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है और उनकी कृति-योंका सामान्य परिचय भी दिया गया है। पंडि-तजीका निश्चित जन्म-संवत् अभी और वि-चारणीय है।

इस संस्करणमें कुछ अशुद्धियाँ रह गई हैं जो खटकने योग्य हैं फिर भी सम्पादकजीने इस संस्करणके पीछे जो परिश्रम किया है वह सराहनीय है। संघने इस संस्करणको प्रकाशितकर खड़ी भाषा-प्रेमी पाठकोंका एक बड़ा हित किया है इसके लिये वह अवश्य धन्यवादार्ह है। सफाई-छपाई अच्छी है। स्वा-ध्याय-प्रेमियोंको इसे मंगाकर अवश्य पढ़ना चाहिए।

२. कन्नड-प्रान्तीय ताडपत्रीय ग्रन्थ-सूची—सम्पादक पं० के० भुजबली शास्त्री, मूडबिद्री, प्रकाशक भारतीयज्ञानपीठ काशी, पृष्ठ संख्या ३५४ मूल्य सजिल्द प्रतिका तेरह रुपया।

प्रस्तुत ग्रन्थका विषय उसके नामसे स्पष्ट है। इसमें जैन-मठ, जैनसिद्धान्तभवन, सिद्धान्तवसदि आदि शास्त्रभंडार मूडबिद्री, जैनमठ कारकल और आदिनाथ ग्रन्थभण्डार अलिपूर आदि स्थानोंके भ-ण्डारोंमें स्थित ताडपत्रीय ग्रन्थोंकी एक सूची है। उक्त सूचीका संकलन भारतीयज्ञानपीठ काशीकी कन्नड़ शाखाके द्वारा हुआ है। दि० जैन समाजमें विविध प्रान्तोंके समस्त शास्त्र-भण्डारोंमें स्थित ग्रंथोंकी एक मुकम्मिल सूचीकी बहुत आवश्यकता है, उसका अभाव पद-पदपर खटकता है, जबकि श्वेताम्ब-रीय समाजके शास्त्र-भण्डारोंकी कई विशाल-सूचियां प्रकाशित हो चुकी हैं। प्रस्तुत सूचीके प्रकाशनसे उसकी आंशिक पूर्ति हो जाती है। खेद है कि हमें अभी तक भी इस बातका पता नहीं है कि हमारे पास कितनी शास्त्र-सम्पत्ति है। अस्तु, भारतीय ज्ञानपीठ काशीद्वारा किया गया यह प्रयत्न प्रशंस-नीय है। आशा है ज्ञानपीठ इस दिशामें और भी प्रयत्नशील होगी।

इस संस्करणमें कितनी ही अशुद्धियाँ रह गई हैं। प्रस्तावके पृष्ठ २६ पर अप्रकाशित ग्रंथोंकी जो तालिका दी गई है उसमें ५५ नम्बरका ग्रन्थ प्रद्युम्नचरित है जो महाकवि महासेनकी अनुपम कृतिरूपसे प्रसिद्ध है। वह अपने मूलरूपमें सं० १९७३ में माणिक-चन्द दिगम्बर जैन-ग्रन्थमाला, बम्बईद्वारा प्रकाशित हो चुका है जिसका नं० ८ है। अतः उसे अप्रकाशित ग्रन्थोंकी तालिकामें नहीं रखना चाहिये।

सूचीके १२६ वें पृष्ठपर मूडबिद्रीके जैन-मठके ताडपत्रीय ग्रन्थोंकी सूची देते हुए ११५ वें नं० पर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वादिराजकृत 'यशोधर-काव्य' का परिचय दिया है और लिखा है—कि इसमें स्वोपज्ञ संस्कृत टीका भी है और विशेषद्वारा उस टीकाको क्षेमपुरके नेमिनाथ-चैत्यालयमें रचे जानेका भी समुल्लेख किया है। वादिराजने अपने किसी काव्य-ग्रन्थपर स्वोपज्ञ टीका लिखी हो, यह ज्ञात नहीं होता। उनके यशोधर-काव्य और पार्श्वनाथ-चरित दोनों ही ग्रन्थ मुद्रित हो चुके हैं, पर उनकी स्वोपज्ञ टीकाओंका कोई परिचय नहीं है। मालूम होता है कि किसी अन्य विद्वान्की टीकाको ही 'स्वोपज्ञ' भूलसे लिखा गया है; क्योंकि उसी सूचीके १३० वें पृष्ठपर १२६ वें नम्बरके ग्रन्थ 'यशोधर-काव्य-टीका' के, जिसका रचयिता पंडित लक्ष्मण है और जिसकी पत्र-संख्या भी ११५ नम्बरके समान ३२ बतलाई गई है, अन्तिम प्रशस्तिके दो पद्य सूचीमें निम्नरूपसे दिये हुए हैं :—

"अकारयदिमां टीकां चिक्कणो गुणरत्नणः ।
अकरोज्जिनदासोऽयं चिक्कणात्मजलक्ष्मणः ॥१॥
श्रीमत्पद्मणगुम्मटेत्यभिहितौ श्रीवर्णिनौ भूतले,
भ्रातारौश्चारुचरित्रवार्धिहिमगू तत्प्रीतये लक्ष्मणः ।
मन्दो बन्धुरवादिराजविदुषः काव्यस्य कल्याणदां,
टीकां क्षेमपुरेऽकरोद् गुरुतरश्रीनेमिचैत्यालये ॥२॥"

इन पद्योंसे स्पष्ट मालूम होता है कि यशोधर-काव्यकी इस टीकाको लक्ष्मणने अपने पिताके अनुरोधसे बनाई है और अपने दोनों भाई पद्मण और गुम्मट वणिद्वयके कहनेसे उनके प्रेमवश क्षेमपुरके बृहत् नेमिनाथ-चैत्यालयमें उसे रचा है। बहुत संभव है दूसरी प्रतिमें, जिसका ऊपर उल्लेख किया गया है यही टीका साथमें अंकित हो, जिसे स्वोपज्ञ बतलाया गया है, यदि वह स्वोपज्ञ टीका थी तो उसके अन्तकी प्रशस्तिके पद्य भी उद्धृत कर दिये जाते जिससे फिर शंकाको कोई स्थान नहीं रहता। अस्तु, दोनों ग्रन्थोंकी ३२ पत्रात्मकसंख्या, और क्षेमपुरके नेमिनाथचैत्यालयमें निर्माण ये दोनों बातें विचारणीय हैं। क्योंकि दोनों टीकाओंका एक ही स्थानमें निर्माण होना अवश्य ही विचारणीय है। छपाई-सफाई प्रायः अच्छी है। यह ग्रन्थ प्रत्येक पुस्तकालयमें संग्रह करने योग्य है।

३. **हिन्दी-पद्य-संग्रह**—सम्पादक—मुनि कान्तिसागर प्रकाशक—श्री जिनदत्तसूरि ज्ञान-भंडार, सूरत। पृष्ठ-संख्या ६८।

प्रस्तुत पुस्तकमें विभिन्न कवियोंद्वारा संकलित नगरोंकी परिचयात्मक गजलोंका संग्रह है जो ऐतिहासिक दृष्टिसे महत्वपूर्ण है। इनसे उन नगरोंकी तत्कालीन परिस्थितिका चित्र सामने आजाता है। दि० जैनशास्त्र-भंडारोंमें इस प्रकारकी अनेक गजलें, कवित्त तथा लावनियाँ पाई जाती हैं जिनमें उनकी ऐतिहासिक परिस्थितिके साथ वहाँकी जनताकी धार्मिक परिणतिका भी परिज्ञान होजाता है। मुनिजीका यह कार्य प्रशंसनीय है। आशा है वे इस प्रकारकी अन्य ऐतिहासिक कविताओंका भी संग्रह प्रकाशित करनेका प्रयत्न करेंगे।

पुस्तकके अन्तमें बतौर परिशिष्टके गजलोंमें प्रयुक्त हुए नगर, ग्राम, राजा, मंत्री, सेठ और श्रावक-श्राविकाओंके नामोंकी सूचीका न होना खटकता है। आशा है अगले संस्करणमें इस बातका ध्यान रक्खा जावेगा।

—परमानन्द जैन, शास्त्री

Jain Education International　For Personal & Private Use Only　www.jainelibrary.org

सम्पादकीय

—:❀:—

अनेकान्तका नया वर्ष

इस किरणके साथ अनेकान्तका १० वाँ वर्ष प्रारम्भ होता है और यह वर्षारम्भ श्रावण कृष्ण प्रतिपदाकी उस पुण्यतिथिसे किया जारहा है जो प्राचीन भारतका नव-वर्ष दिवस new years day है तथा जिस दिन श्रीवीरभगवानकी प्रथम दिव्यध्वनि-वाणी विपुलाचलपर्वतपर खिरी थी—उनका शासनतीर्थ प्रवर्तित हुआ था—और जो लोकमें वीरशासनजयन्ती पर्वके रूपमें विश्रुत है। अब अनेकान्त देहलीसे प्रकाशित हुआ करेगा और देहलीके अकलंकप्रेसमें उसके छपानेकी योजना की गई है। प्रेसने समयपर पत्रको छापकर देनेका पुख्ता वादा किया है और वह एक सप्ताहमें एक किरणको छाप देनेके लिये वचनबद्ध हुआ है। छपाईका चार्ज और देहलीका खर्च बढ़ जानेपर भी प्रचारकी दृष्टिसे मूल्य वही ५) रु० वार्षिक ही रक्खा गया है। इतने मूल्यमें पत्रका खर्च पूरा नहीं हो सकता उस वक्त तक जब तक कि पत्रकी ग्राहकसंख्या हजारोंकी तादादमें न बढ़े और कोई भी पत्र हानि उठा कर अधिक समय तक जीवित नहीं रह सकता। पिछले वर्ष जो घाटा रहा उसे देखते हुए इस वर्ष पत्रको निकालनेका साहस नहीं होता था परन्तु अनेक सज्जोंका यह अनुरोध हुआ कि अनेकान्तको बन्द नहीं करना चाहिये; क्योंकि इसके द्वारा कितने ही महत्वके साहित्यका गहरी छान-बीनके साथ नव-निर्माण और प्राचीन साहित्यका सुसम्पादन होकर प्रकाशन होता है, जो बन्द होनेपर रुक जायगा और उससे समाजको भारी हानि पहुँचेगी। इधर वीरसेवामन्दिरके एक विद्वानूने निजी प्रयत्नसे १०० और दूसरे विद्वानूने २०० नये ग्राहक बनानेका दृढ संकल्प करके प्रोत्साहित किया। उधर गुण-ग्राहक प्रेमी-पाठकोंसे यह आशा की गई कि वे अनेकान्तको अनेक मार्गोंसे सहायता भेजकर तथा भिजवा कर उसी प्रकारसे अपना हार्दिक सहयोग प्रदान करेंगे जिस प्रकार कि वे अनेकान्तके ४थे, ५वें वर्षोंमें करते रहे हैं और जिन वर्षोंमें अनेकान्तको घाटा न रहकर कुछ बचत ही रही थी। यहाँपर एक बात खासतौरसे नोट कर देनेकी है जो हालमें देहली म्यूजियमके सुपरिन्टेन्डेन्ट डा. वासुदेवशरण-जी अग्रवालने मिलनेपर कहा जिसका सार इतना ही है कि देवमूर्ति और देवालयके निर्माण तथा प्रतिष्ठादि कार्योंमें जिस प्रकार आर्थिक दृष्टिको लक्ष्यमें नहीं रक्खा जाता—अर्थोपार्जन उसका ध्येय नहीं होता—उसी प्रकार सरस्वतीदेवीकी मूर्ति जो साहित्य है उसके निर्माणादि कार्योंमें आर्थिक दृष्टिको लक्ष्यमें नहीं रखना चाहिये। प्रयोजन उनका यह कि अनेकान्तको शुद्ध साहित्यिक तथा ऐतिहासिक पत्र बनाना चाहिये और उसमें महत्वके प्राचीन ग्रन्थोंको भी प्रकाशित करते रहना चाहिये। जैनसमाजमें साहित्यिक रुचि कम होनेसे यदि पत्रकी ग्राहकसंख्या कम रहे और उससे घाटा उठाना पड़े तो उसकी चिन्ता न करनी चाहिये—वह घाटा उन सज्जोंके द्वारा पूरा होना चाहिये जो सरस्वती अथवा जिनवाणी-माताकी पूजा-उपासना किया करते हैं और देव गुरु-सरस्वतीको समान-दृष्टिसे देखते हैं। ऐसा होनेपर जैनसमाजमें साहित्यिक रुचि भी वृद्धिको प्राप्त होगी, जिससे पत्रको फिर घाटा नहीं रहेगा और लोकका जो अनन्त उपकार होगा उसका मूल्य नहीं आँका जा सकता—स्थायी साहित्यसे होनेवाला लाभ देवमूर्तियों आदिसे होनेवाले लाभसे कुछ भी कम नहीं है। बात बहुत अच्छी तथा सुन्दर है और उसपर जैनसमाजको खासतौरसे ध्यान देकर अनेकान्तकी सहायतामें सविशेष रूपसे सावधान होना चाहिये, जिससे अनेकान्त घाटेकी चिन्तासे मुक्त रहकर प्राचीन साहित्यके उद्धार और समयोपयोगी नव-साहित्यके निर्माणादि कार्योंमें पूर्णतः दत्तचित्त रहे और इस तरह समाज तथा देशकी ठीक-ठीक सेवा कर सके। अनेकान्तकी सहायताके अनेक मार्ग हैं जिन्हें पाठक अन्यत्र प्रकाशित 'अनेकान्तकी सहायताके मार्ग' इस शीर्षकपरसे जान सकते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

देहलीमें वीर-शासन-जयन्तीका अपूर्व समारोह

भारतकी राजधानी देहलीमें भारतके आध्यात्मिक संत पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक गणेशप्रसादजी वर्णीकी अध्यक्षतामें श्रावण कृष्णा प्रतिपदा, ता० ११ जुलाई सन् १६४६ को रात्रिके ७॥ बजेसे १०॥ बजे तक लालमन्दिरजीके अहाते-में वीर-सेवामन्दिर सरसावाके तत्त्वावधानमें वीर-शासन-जयन्तीका अपूर्व समारोह सानन्द सम्पन्न हुआ।

जनता चार-पाँच हजारकी तादादमें उपस्थित थी और उसमें अपूर्व उल्लास था। ला० रघुवीरसिंहजी जैनावाच-कम्पनी और जैन-जागृत-संघके सदस्योंने इस समारोहकी व्यवस्था की थी।

पं० मुन्नालालजी समगौरयाके मंगलगानके पश्चात् स्वामी निजानन्दजीने अपने भाषणमें वीर-शासनकी महत्ता-को बतलाया। अनन्तर जैटली साहबने, जो दर्शन-शास्त्रके प्रौढ विद्वान् हैं और जैनधर्मसे विशेष प्रेम रखते हैं, भारतीय-दर्शनोंके साथ तुलनात्मकरूपसे जैनदर्शन और उसके अहिंसा, सत्य तथा कर्म आदि सिद्धान्तोंका सुन्दर एवं मार्मिक विवेचन किया और बतलाया कि भारतीय-दर्शनोंमें जैन-दर्शनका सबसे महत्वपूर्ण स्थान है और महावीरका शासन ही विरोधोंका समन्वय करनेवाला है। आपने भाषणके आदि और अन्तमें महावीरके चरणोंमें अपनी हार्दिक श्रद्धाञ्जलि अर्पित की। पश्चात् बा० जय-भगवानजी एडवोकेट पानीपतने अपने महत्वपूर्ण भाषणमें वीर-शासनके प्रचारकी प्रेरणा करते हुए अपने जीवनको वीर-शासनका सच्चा अनुयायी बनानेकी ओर संकेत किया। अनन्तर वीर-सेवामन्दिरके संस्थापक पं० जुगलकिशोरजी मुख्तारने वीर-शासनदिवसकी महत्ता और तिथिकी पवित्रता एवं ऐतिहासिक प्राचीनताका उल्लेख करते हुए 'महावीर-सन्देश' नामकी स्वरचित कविता पढ़कर सुनाई। इसके बाद अध्यक्ष महोदय पूज्य वर्णीजीका प्रभावक भाषण हुआ। आपने भगवान् महावीरके शासन-सिद्धान्तोंका स्वयं आचरण करनेकी प्रेरणा करते हुए कहा कि आज दुनिया अशान्त है। वह शान्तिका उपाय चाहती है। शान्तिका सर्वश्रेष्ठ उपाय महावीरकी अहिंसा है। विदेशोंसे अहिंसाके प्रचारकी माँग आरही है, अहिंसाके प्रचारका इससे और महान् अवसर कब मिलेगा? आप दश-बीस-लाख रुपया इकट्ठे कीजिये और एक जहाज खरीदकर विदेश चलिये और वहाँ पर वीर-शासनकी वास्तविक अहिंसाका प्रचार करिये।

मुख्तार साहबकी संस्था वीर-सेवामन्दिर वीर-शासनकी सेवा कर रही है, क्या आप लोग वीर-सेवामन्दिरको स्थानादिका प्रबन्ध नहीं कर सकते? यदि आप लोग अपने दैनिक खर्चमेंसे फी-रुपया एक-पैसा भी निकालें, जो अधिक नहीं है तो लाखों रुपया इकट्ठा होसकता है और उससे वीर-शासनके प्रचारमें पूरी मदद मिल सकती है। आप वीर-सेवामन्दिरको अपनाएँ और उसकी तन-मन-धनसे सहायता करें जिससे वह प्राचीन-शास्त्रोंके उद्धार करनेमें समर्थ होसके। भाषण चालू रखते हुए पूज्य वर्णीजीने कहा कि आज वीर-शासनका दिवस है। आजसे आप लोग मद्य, मांस और मधुके त्यागपूर्वक अष्ट मूलगुणों-को धारण करनेकी प्रतिज्ञा करें।

इसके बाद पं० राजेन्द्रकुमारजी प्रधानमंत्री दि० जैन-संघने पूज्य वर्णीजीकी भावनापर जोर देते हुए कहा कि मुख्तार साहबने जैन-साहित्यकी बड़ी सेवा की है और उसके लिये अपना सब कुछ दे दिया है। आप लोग अपनी आमदनीमेंसे डेढ़ परसेन्ट निकालकर उसे वीर-सेवामन्दिरको प्राचीन-शास्त्रोंके समुद्धारके लिये दे देवें। वीर-सेवामन्दिरने जैन-संस्कृतिके संरक्षणका बड़ा कार्य किया है। इसपर अनेक सज्जनोंने उसी समय अपने नाम लिखाये।

इस तरह वीर-शासन-जयन्तीका यह महोत्सव बड़े आनन्द और उल्लासके साथ समाप्त हुआ।

—परमानन्द जैन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

Regd. No. D. 397

हमारे सुरुचिपूर्ण प्रकाशन

१. अनित्य-भावना—आ० पद्मनन्दिकृत भावपूर्ण और हृदयग्राही महत्वकी कृति, साहित्य-तपस्वी पण्डित जुगलकिशोर मुख्तारके हिन्दी-पद्यानुवाद और भावार्थ सहित। मूल्य चार आना।

२. आचार्य प्रभाचन्द्रका तत्त्वार्थसूत्र—सरल-संक्षिप्त नया सूत्र-ग्रन्थ, पं० जुगलकिशोर मुख्तारकी सुबोध हिन्दी-व्याख्यासहित। मूल्य चार आना।

३. न्याय-दीपिका—(महत्वका सर्वप्रिय संस्करण)—अभिनव धर्मभूषण विरचित न्याय-विषयकी सुबोध प्राथमिक रचना। न्यायाचार्य पं० दरबारीलाल कोठियाद्वारा सम्पादित, हिन्दी-अनुवाद, विस्तृत (१०१ पृष्ठकी) प्रस्तावना, प्राक्कथन, परिशिष्टादिसे विशिष्ट, ४०० पृष्ठप्रमाण, लागत मूल्य पाँच रुपया। विद्वानों, छात्रों और स्वाध्याय-प्रेमियोंने इस संस्करणको बहुत पसन्द किया है। इसकी थोड़ी ही प्रतियाँ शेष रही हैं। शीघ्रता करें। फिर न मिलने पर पछताना पड़ेगा।

४. सत्साधुस्मरणमङ्गलपाठ—अभूतपूर्व सुन्दर और विशिष्ट सङ्कलन, सङ्कलयिता पंडित जुगलकिशोर मुख्तार। भगवान महावीरसे लेकर जिनसेनाचार्य पर्यन्तके २१ महान् जैनाचार्योंके प्रभावक गुणस्मरणोंसे युक्त। मूल्य आठ आना।

५. अध्यात्मकमलमार्तण्ड—पञ्चाध्यायी तथा लाटीसंहिता आदि ग्रन्थोंके रचयिता पंडित राजमल्ल विरचित अपूर्व आध्यात्मिक कृति, न्यायाचार्य पंडित दरबारीलाल कोठिया और पं० परमानन्द शास्त्रीके सरल हिन्दी-अनुवादादिसहित तथा मुख्तार पंडित जुगलकिशोरद्वारा लिखित विस्तृत प्रस्तावनासे विशिष्ट। मूल्य डेढ़ रुपया।

६. उमास्वामिश्रावकाचारपरीक्षा—मुख्तार श्री-जुगलकिशोरद्वारा लिखित ग्रन्थ-परीक्षाओंका इतिहास-सहित प्रथम अंश। मूल्य चार आना।

७. विवाह-समुद्देश्य—पंडित जुगलकिशोर मुख्तारद्वारा रचित विवाहके रहस्यको बतलानेवाली और विवाहोंके अवसरपर वितरण करने योग्य सुन्दर कृति। मूल्य आठ आना।

नये प्रकाशन

१. आप्तपरीक्षा-स्वोपज्ञटीकासहित—(अनेक विशेषताओंसे विशिष्ट महत्वपूर्ण अभिनव संस्करण) तार्किकशिरोमणि विद्यानन्दस्वामि-विरचित आप्तविषय-की अद्वितीय रचना, न्यायाचार्य पण्डित दरबारीलाल कोठियाद्वारा प्राचीन प्रतियोंपरसे संशोधित और सम्पादित, हिन्दी-अनुवाद, विस्तृत प्रस्तावना, और अनेक परिशिष्टोंसे अलङ्कृत $\frac{२० \times २६}{८}$ पेजी साइज, लगभग चार-सौ पृष्ठ प्रमाण, मूल्य आठ रुपया। यह संस्करण शीघ्र प्रकाशित होरहा है।

२. श्रीपुरपार्श्वनाथ-स्तोत्र—उक्त विद्यानन्दाचार्य-विरचित महत्वका स्तोत्र, हिन्दी-अनुवाद तथा प्रस्तावनादि सहित। सम्पादक—न्यायाचार्य पण्डित दरबारी-लाल कोठिया। मूल्य एक रुपया।

३. शासन चतुस्त्रिंशिका—विक्रमकी १३ वीं शताब्दीके विद्वान् मुनि मदनकीर्ति-विरचित तीर्थ-परिचयात्मक ऐतिहासिक अपूर्व रचना, हिन्दी अनुवाद-सहित। सम्पादक—न्यायाचार्य पण्डित दरबारीलाल कोठिया। मूल्य बारह आना।

व्यवस्थापक—वीरसेवामन्दिर,

७/३३ दरियागंज, देहली।

प्रकाशक—परमानन्द जैन शास्त्री, वीरसेवामंदिर ७/३३ दरियागंज देहली, मुद्रक—अजितकुमार जैन शास्त्री, अकलंकप्रेस, सदरबाजार, देहली

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org